पंचम अध्याय

लक्ष्मीनारायण लाल के नाटकों में प्रतीकात्मकता

अ) अन्धा कुआँ,

ब) मादा कैक्टस,

क) सूखा सरोवर,

ड) रक्तकमल,

इ) रातरानी,

फ) सुंदर रस

ग) दर्पन

च) सूर्यमुख

छ) मिस्टर अभिमन्यु,

ज) कर्फ़्यू ।

पंचम अध्याय

अन्धा कुआँ - (सन् १९५५)

'अन्धा कुआँ' में नाटककार ने भारतीय गाँवों में व्याप्त आर्थिक विपन्नता के कारण उत्पन्न होने वाले सामाजिक और पारिवारिक द्वंद्व का अत्यंत करुण और मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है। गाँव की पृष्ठभूमि में 'भगौती' और 'सूका' के विषमता ग्रस्त दाम्पत्य जीवन का वर्णन किया है।

'सूका', व्यभिचारी, अत्याचारी भगौती की पत्नी है। इंदर नामक लड़का सूका का प्रेमी था, परंतु जब भगौती सूका को इंदर से जीत कर कमालपुर लाता है, तब से सूका का दिल इंदर से सदा के लिए टूट जाता है। भगौती निरंतर, अपनी पत्नी सूका को पीटा करता है, क्योंकि वह अपने प्रेमी इंदर के साथ कलकत्ता भाग गयी थी। वारंट निकालने पर इंदर और सूका पकड़े गये और सूका फिर से भगौती के पास आई। अब वह राक्षस होकर उसकी चमड़ी उधेड़ा करता है। लोहे की गर्म सलाखों से उसे दागता है। ऐसी स्थिति में इंदर फिर एक दिन आता है और सूका से, भाग चलने को कहता है। किंतु सूका नहीं जाती। भगौती के भाई 'अलगू' और भाभी 'राजी', सूका से हमदर्दी रखते हैं। लेकिन भगौती के सामने उनकी चल नहीं पाती। अत: भगौती उसे अलग कर देता है। एक दिन सूका घर से गायब हो जाती है। अनेक प्रकार की यातनाओं को सहने के बाद वह कुएँ में जान देने के लिए जाती है। वह जिस कुएँ में कूदती है, उसके

सूखा होने के कारण सूका बच जाती है। वह मर नहीं पाती। इसके बाद वह न भागने की सोचती है और न ही आत्महत्या करने की।

कुछ दिनों बाद भगौती सूका की सौत के रूप में लच्छी को खरीद कर लाता है, किंतु सूका लच्छी के जीवन को बर्बाद होने से बचाती है। वह लच्छी को, उसके पूर्व प्रेमी, जिससे उसकी शादी होने को थी, उसके साथ भगा देती है। भगौती इंदर का घर फुँकवा देता है। मौका पाकर इंदर बाजार में, भगौती को मार कर उसके हाथ पैर तोड देता है। अब भगौती असहाय बनकर चारपाई पर पडा रहता है और सूका एक आदर्श पतिव्रता की तरह भगौती की सेवा करती है। एक दिन फिर से इंदर आता है। वह भगौती को मारकर, सूका को भगाकर ले जाना चाहता है। आते ही वह भगौती पर प्रहार करने के लिए दौडता है। तब सूका स्वयं उसकी प्रतिरक्षा में अपने हाथ में गँडासा लेती है। वह पति के बारे में कहती है, उसका पति घायल है लेकिन बेसहारा नहीं। सूका स्वयं गंडासे से इंदर पर प्रहार करती है। इंदर सूका से लडकर गँडासा प्राप्त कर लेता है और अपनी कटार तथा गँडासे से भगौती पर प्रहार करता है। सूका पति के बचाव के लिए बीच में आ जाती है और गँडासे के प्रहार से घायल होकर मर जाती है। उसी वक्त अलगू के साथ कई लोग आ जाते हैं। तब भगौती की करुण आवाज गूँजती है "मैं खूनी हूँ। सूका का खून मैंने किया है, मैंने किया है।"[१]

'अन्धा कुआँ' भारतीय वैवाहिक पध्दति का प्रतीक है, जिसमें गिर जाने पर मुक्ति संभव नहीं। सूका सचमुच के कुएँ से तो निकाल ली जाती है, किंतु पति की क्रूरता, अत्याचार और अमानुषिक व्यवहार से मुक्त होने का उसके पास कोई रास्ता नहीं है। वास्तव में विवाह होने के बाद, उस सामाजिक बंधन से मुक्त होने का भारतीय नारी के पास कोई उपाय नहीं है। नाटक के शीर्षक में यह करुण व्यंजना निहित है। वस्तुत: अंधा कुआँ भगौती है, जिस कुएँ में सूका

१ डॉ.लक्ष्मीनारायण लाल - अन्धा कुआँ - पृ.क्र.२५८।

एक बार गिर कर न मर सकी, अर्थात् उससे छुटकारा न पा सकी। सूका का इस संबंध में स्वयं कथन इस प्रकार है `लोग कहते हैं, कि मेरी कोख अंधी है, इसलिए जब मैं मरने भी गई तो मुझे मेरे कर्म से अन्धा कुआँ ही मिला। पर मैं समझाती हूँ। वह कोई कुआँ न था, वह था गाँव का झूठ।`[1] स्पष्ट है, भगवती झूठ बोलकर ही सूका को कचहरी से जीत कर लाया था, जिससे सूका को भगौती रुपी अन्धे कुएँ के चरित्र पर निर्भर रहना पडा। वह कहती है `अगर वह कुआँ सच अन्धा होता, तो उसमें दो-चार जहरीले साँप जरुर होते। ... ऐसे कुएँ से एक बार गिर कर आज तक कोई जिंदा बाहर नहीं निकला है, लेकिन मैं निकली हूँ।[2] वह फिर कहती है `अन्धा कुआँ यही है, जिसके संग मैं ब्याही गई हूँ, जिसमें एक बार मैं गिरी और ऐसी गिरी कि फिर न उबरी न मुझे कोई निकल पाया न मैं खुद निकल सकी और न कभी निकल ही पाऊँगी, बस, धीरे-धीरे इसी में चुक कर मर जाऊँगी।[3]

सूका अन्धे कुएँ में गिर कर बच जाती है। फलस्वरुप उसे अंधी समाज-व्यवस्था में लौटना पडता है, जो नारी के प्रति हृदयहीन है। अन्धा कुआँ प्राण-दान देता है, लेकिन अन्धे पुरुषों का समाज नारी को तिलतिलकर जलाता है। एक स्थल पर अलगू सूका के बंधन खोलना चाहता है। इस पर सूका कहती है `इन रस्सियों को तैयार करने वाले और इनसे गाँठ बनाने वाले, जब तक वे हाथ मौजूद हैं, तब तक केवल इन रस्सियों को काटने से कुछ नहीं होगा, कुछ नहीं होगा बाबू।[4]

डॉ. सरजूप्रसाद मिश्र लिखते हैं `प्रश्न यह है, कि अंधा कुआँ कौन है? भगौती है या इंदर या ग्रामीण समाज?` उनके अनुसार, `अन्धा कुआँ वह ग्रामीण समाज है, जो आर्थिक संकट से ग्रस्त होकर अपनी बेटियों को थोडे-से रुपयों

---

१ डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल - अन्धा कुआँ - पृ.क्र.१२८।
२ - वही - पृ.क्र.१२९।
३ - वही - पृ.क्र.१२९।
४ डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल - अन्धा कुआँ - पृ.क्र.६८।

के लिए बेच देता है, वह समाज जो अभी भी नारी संबंधी मध्ययुगीन धारणाओं को मरे साँप की तरह गले में धारण किये हुए हैं।[१] समाज में जब तक इंदर कायर रहेंगे, तब तक सूकाएँ अंधे कुओं में गिरती रहेंगी। शराबी पति की दारुण यातना सहकर भी अपने आदर्श का पालन करने वाली सूका एक नहीं, असंख्य है। पत्नी का शोषण करनेवाला भगौती भी अकेला नहीं, कदम-कदम पर ऐसे पुरुषों के दर्शन होते हैं, जो पत्नी के शोषण में ही अपने पुरुषार्थ की सिध्दि मानते हैं।

सूका, भारत की उस आदर्श नारी का प्रतीक है, जो कष्ट, उत्पीडन के बाद भी पति भक्ति से चिपकी रहती है। अलगू और राजी के हृदय में भगौती के प्रति सहृदयता और सूका के प्रति ममता दिखाई पडती है। नन्दो का चरित्र उच्छृंखलता का प्रतीक है। इन्दर में बदले की भावना और अपनी प्रेमिका सूका के प्रति अगाध निष्ठा है। दूसरे अंक में पृष्ठभूमि में चलनेवाला लडकियों का गीत सूका की परतंत्रता, असहायता एवं बेबसी की वेदना की ओर संकेत करता है।

अंत में कहा जा सकता है, कि ' अंधा कुआँ ' नाटक का प्रतीक शीर्षक तक ही सीमित है, जो भारतीय नारी के वैवाहिक जीवन पर मार्मिक तथा कठोर व्यंग्य के रूप में घटित होता है। पति-पत्नी विरोधी होते हुए भी पारिवारिक जीवन के अंधे कुएँ में कैद हैं तथा जिससे मुक्त होने का उनके पास कोई उपाय नहीं है।

मादा कैक्टस (सन् १९५९)

' मादा कैक्टस ', भारतीय समाज में नारी के मूल्यांकन को लेकर रूपायित किया गया नाटक है। नाटक में कैक्टस नए इन्सान का प्रतीक बनकर आया है। नारी को ' मादा कैक्टस ' का प्रतीक माना है, तो पुरुष को ' नर कैक्टस ' का।

---

१ डॉ. सरजूप्रसाद मिश्र – नाटककार लक्ष्मीनारायण लाल – पृ.क्र. ५६-५७।

नाटक के नायक की धारणा है, कि मादा कैक्टस के पास नर कैक्टस रहने पर सूख जाता है। मादा कैक्टस, नर कैक्टस का जीवन-सत्व सोखकर उसे ठूँठ बना देती है। बिल्कुल वैसे ही नारी भी अपेक्षाकृत अधिक बलवती होती है और अवसर पाकर वह भी पुरुष का जीवन-सत्व सोखकर उसे ठूँठ बना देती है।

नाटक का नायक अरविंद एक सुविख्यात कलाकार है। उसे कैक्टस के पौधे पालने का बहुत शौक है। उसके पास बहुत से कैक्टस हैं। उन सब कैक्टसों के बीच उसने एक मादा कैक्टस भी पाल रखा है। वह मादा कैक्टस को सभी कैक्टसों से दूर रखता है, क्योंकि उसकी धारणा है, कि मादा कैक्टस अन्य कैक्टसों का जीवन सत्व सोख लेती है। बिल्कुल वैसे नारी भी पुरुष का जीवन सत्व सोख कर उसे ठूँठ बना देती है। अपने इन्हीं विचारों के अनुरूप अरविंद ने अपनी विवाहिता पत्नी सुजाता का परित्याग कर दिया है। वह मानता है, कि सुजाता के साथ रहने पर उसके जीवन की गति मंद पड़ गयी। उसकी कला जर्जर होती गयी। अपनी कला के विकास को अवरुध्द होते देखना उसे पसंद नहीं था, अत: वह सुजाता को छोड़ देता है।

दूसरी ओर सुजाता कलाक्षेत्र के विकास के लिए वैवाहिक संबंधों को महत्वपूर्ण समझती है। अरविंद के तिरस्कार को देखकर, सुजाता ने यही बात प्रमाणित करने के लिए ही सोद्देश्य, कवि एवं उपन्यासकार दिवाकर से विवाह किया। वह यह दिखाना चाहती है, कि विवाह कर लेने पर भी उसकी वजह से दिवाकर जैसे कलाकार की कला में कोई अवरोध नहीं हो सका। फलत: अरविंद के विचार मात्र भावुकतापरक एवं निरर्थक हैं। सुजाता के बाद, अरविंद मीनाक्षी नामक लड़की से प्यार करता है। दोनों के बीच अतिशय मेल-मिलाप देखकर पुराने विचारों वाले उसके दादा उसे मीनाक्षी से विवाह कर लेने की सलाह देते हैं। परंतु अरविंद विवाह को पुराना घरौंदा बताता है। वह नर-नारी के बीच अंडरस्टैंडिंग और सिम्पैथी, पारस्परिक बोध और सहानुभूति को महत्वपूर्ण बताता है।

अरविंद को महसूस होता है, कि कलाकार को पत्नी की नहीं, प्रेयसी की जरूरत है, जो उसकी कला-चेतना को अपनी भावात्मक संवेदना से सजग बनाएँ। तब से वह सहज जीवन को त्यागकर कृत्रिम जीवन शुरू करता है। जब पत्नी उसके पास थी, तब निःस्वार्थ, नैसर्गिक और प्रकृत प्रेम की धारा उसे सुलभ थी, तब वह एक भी चित्र पूरा नहीं कर पाया। जब वह स्वतंत्र हुआ, एकाकी हुआ तो उसने एक-से एक श्रेष्ठ चित्र बनाएँ, खूब नाम-यश कमाया। अब उसके पास बंगला और टेलिफोन भी हो गया। `मॉडर्न आर्ट` में वह एक `अथॉरिटी` माना जाने लगा। उसके एकाकी जीवन में उसके संगी थे - काँटों से भरे कैक्टस के पौधे, जिन्हें वह प्यार से पालता था। परंतु अब उसकी कला कृत्रिम, बनावटी, नकली बनी है। अब उसके चित्रों में जीवन का वह स्वाभाविक स्पंदन नहीं रह गया है। वह विदेशी चित्रों की नकल करके ही नाम-यश-धन कमाने लगा है। खुद को ठगाता रहा है और औरों को भी। उसका सारा जीवन एक विशाल झूठ बनकर रह गया है। अपने इस कृत्रिम जीवन में, कला के बहाने वह मीनाक्षी से प्रेम करने लगता है। मीनाक्षी उसकी केवल प्रेयसी है। दोनों शादी करना नहीं चाहते हैं। मीनाक्षी के साथ अरविंद की कला विकसित होने लगती है , परंतु अंत में मीनाक्षी बीमार हो जाती है। मानो वह अरविंद के सहवास में सूखने लगती है। इसलिए कहा जा सकता है, विवाह ही मनुष्य के लिए आवश्यक है। नर कैक्टस के सानिध्य में मादा कैक्टस सूख जाती है - ऐसी बात नहीं है, तो नारी भी वैवाहिक संबंध रहित, पुरुष के सांनिध्य में घुटघुटकर सूख जाती है।

अरविंद मानता है - मादा कैक्टस के संपर्क में आनेवाला नर कैक्टस जीवन - विहीन हो जाएगा, सूख जाएगा, मर जाएगा। एकाध को उसने शायद मरते भी देखा, पर उसे यह पता नहीं, कि वे अपनी मृत्यु मरे या मादा कैक्टस ने उन्हें मारा। इसलिए उसकी धारणा पुष्ट होती है और वह स्त्रियों से दूर भागने लगता है। उसका जीवन और जीवन से उत्पन्न होनेवाली कला, दोनों ही कृत्रिम और नकली साबित होती है और अंत में वह पाता है, कि इस बार नर कैक्टस नहीं - मादा

कैक्टस ही सूख गयी है ।

नाटक में मुख्य पात्र अरविंद और मीनाक्षी समस्या पात्र के रूप में आये हैं । दद्दा उन दोनों के विषय में कहते हैं ` सोशल स्ट्रक्चर पर विश्वास नहीं । सारे ट्रेडिशन को आपने तोडा फिर आपके पास क्या है, जिसके सहारे आप जीयेंगे और अपनी कल्याकृतियाँ तैयार करेंगे ? [१] इस प्रकार नाटक में पुराने और मूल्यों का संघर्ष है । नये मूल्यों को अपनाकर पुरानी मर्यादाओं के प्रति अनास्था रखनेवालों को सोचने के लिए मजबूर कर दिया है । मीनाक्षी और अरविंद ब्याह को बच्चों का घरोंदा मानते हैं । उससे भी अधिक बडी चीज मानते हैं - अंडरस्टैंडिंग और सिम्पैथी । अरविंद अपनी पत्नी सुजाता को इसलिए छोड देता है, कि वह कला में बाधक है । वह गति और प्रेरणा नहीं देती । अरविंद जीवन से कटकर कला की सृष्टि करना चाहता है । अरविंद और मीनाक्षी दोनों न्यू वैल्यूज के ठेकेदार हैं । दोनों थोथी गंभीरता के आवरण में ढँके रहते हैं, किंतु अंदर से दोनों खोखले हैं । जीवन को छलावे में रखनेवाली मीनाक्षी इस आवरण में अपने अहं को भले ही संतुष्ट करती रही हो, लेकिन घुटघुटकर वह तपेदिक का शिकार हो जाती है ।

अरविंद का दावा है, नारी के संपर्क में पुरुष मर जाता है । उसकी कला निष्प्राण हो जाती है । अरविंद के बंगले के बरामदे में एक ऊँचे आधार पर कैक्टस के तीन खूबसूरत गमले अलग अलग रूप में सजाकर रखे हैं । वे एक-दूसरे से सटे हुए नहीं हैं । मीनाक्षी का भाई सुधीर तीनों गमलों को एक-दूसरे से सटा देता है । इस पर अरविंद अपने नौकर गंगाराम को फटकारता हुआ कहता है - ` तुझे कितनी बार बताया है, कि यह बीच का पौधा मादा कैक्टस है । ये दोनों नर कैक्टस हैं । ये मादा इनके लिए खतरनाक है । ये आपस में मिलेंगे, तो ये नर कैक्टस सूख जाएँगे । `[२] यही है वह प्रतीक, जिसे नाटककार ने पूरे नाटक में फैलाने

---

१ डॉ.लक्ष्मीनारायण लाल - मादा कैक्टस - पृ.क्र.४८ - प्र.सं.१९५९ ।

२ " लक्ष्मीनारायण लाल - मादा कैक्टस - पृ.क्र.५७ ।

की कोशिशकी है।

स्वयं नाटककार लिखते हैं, ` मादा कैक्टस का प्रतीक, प्रतीक-योजना की फैशन के लिए नहीं है - प्रतीक महज प्रतीक के लिए, इसे मैं खोखली, बेमानी धाक जमाने की बात मानता हूँ। ... बात टेढी थी इसलिए प्रतीक का सहारा लेना पड़ा। संगीत से लेकर कार्यों तक, घटनाओं से लेकर पात्रों तक ,नीलम के बाजे से अनाथालय के बच्चों के गीततक, मादा कैक्टस से मुर्गाबी चिड़िया तक प्रतीक ही प्रतीक है। [१]

` मादा कैक्टस` में मुर्गाबी चिड़िया प्रतीक बनकर आयी है। सुधीर के शब्दों में यह मुर्गाबी बड़ा गरीब परिंदा है, पर उतना ही खूबसूरत और लाजवाब। वस्तुत: यह` मुर्गाबी ` नारी का (मीनाक्षी, सुजाता) प्रतीक है। अरविंद की दृष्टि में नारी यदि व्यक्तित्व को सुखाने वाली` मादा कैक्टस` है तो सुधीर की दृष्टि में वह मुर्गाबी गरीब किंतु लाजवाब परिंदा है। वहाँ अरविंद पत्नी को` मादा कैक्टस` समझकर त्याग देता है, वहाँ सुधीर उस` मुर्गाबी की रक्षा करना अपना कर्तव्य समझता है। सुधीर द्वारा अरविंद के बंगले के अहाते में शिकार की गई` चिड़िया` सुजाता की ओर संकेत है, जो अरविंद की निर्ममता और कठोरता का शिकार हो चुकी है। दूसरी` मुर्गाबी` मीनाक्षी है। वह भी अरविंद के झूठे बौध्दिक आदर्शों में फँसकर अंदर ही अंदर सूख जाती है। पृष्ठभूमि में बजनेवाला अनाथालय के बच्चों का संगीत भी अरविंद के चरित्र पर ` कमेंट ` के रूप में उभरकर आया है। एक बार मीनाक्षी चमगादड का चित्र बनाने की कल्पना करती है, जो उसके जीवन का सत्य है। उसका प्रेमी अरविंद भी एक चमगादड है, जिसे दिन की रोशनी में, जीवन के प्रकट सत्य में, जीवन दिखाई नहीं पड़ता। उसके लिए रात का अँधेरा और झूठ ही जीवन का पर्याय है।

---

१ डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल - भूमिका - मादा कैक्टस।

इस नाटक का कथानक आधुनिक कहे जाने वाले समाज से संबंधित है, जिसका पुराने मूल्यों पर विश्वास नहीं। अरविंद के अनुसार 'कैक्टस' उन नए इन्सानों का प्रतीक है, जो विरोधी-से-विरोधी परिस्थितियों में भी हरा-भरा रहता है। एक स्थल पर वह पुराने मूल्यों के समर्थक ददा से कहता है, "जी, नये इन्सान का प्रतीक है यह कैक्टस। आज की अंतर्विरोधी परिस्थितियों में भी यह हरा-भरा रहता है। कोई जानवर नहीं, कोई कीडा नहीं, कोई बीमारी नहीं, जो इसे सुखा सके।"[१] इस नाटक का संघर्ष पुराने और नये मूल्यों का संघर्ष है। अरविंद और मीनाक्षी नये मूल्यों के समर्थक हैं, जबकि ददा पुराने मूल्यों का प्रतिनिधित्व करते हैं। अरविंद अत्यधिक बौध्दिक आग्रह के कारण विवाह की अपेक्षा प्रेम-संबंध को अधिक महत्वपूर्ण मानता है, जबकि पुरानी मान्यताओं के प्रतीक ददा विवाह को आवश्यक मानते हैं और अरविंद को मीनाक्षी से विवाह करने के लिए कहते हैं। इस प्रकार पुराने और नये मूल्यों का संघर्ष द्रष्टव्य है।

इस नाटक के संबंध में डॉ.दशरथ ओझा कहते हैं, 'सुजाता प्रतीक है - कला की सुंदरता का। जब अरविंद - अर्थात् नया युग, मीनाक्षी - अर्थात उपयोगिता के वश में होकर पारिवारिक स्नेह,दया, माया,ममता आदि को त्याग देता है,तो सुजाता - अर्थात कलागत सुंदरता साधना के द्वारा दिवाकर - अर्थात - शक्ति से नाता जोड लेती है। उस दशा में मादा - कैक्टस' नवयुग का मूल्य सूख जाता है, अर्थात समाप्त हो जाता है। मीनाक्षी के दोनों फेफडों का एक्स-रे करना मानो उपयोगिता के दोनों पक्षों की अंत:परीक्षा है। अरविंद का मीनाक्षी को पुकारते हुए गिरना, नये मूल्यों पर आधारित कलाकृति का मूर्च्छित होना है। सुधीर का,मुर्गाबी आदि कोमल पक्षियों को मारनेवाली बंदूक फेंक देना,अपने भौतिक सुख मात्र में केंद्रित प्रवृत्ति का परित्याग कर उदात्त धारण करना है।'[२]

---

१ डॉ.लक्ष्मीनारायण लाल - मादा कैक्टस - पृ.२१ (सन १९७२)।

२ डॉ. दशरथ ओझा - हिंदी नाटक उद्भव और विकास - पृ.क्र.४१९-२०।

इस नाटक में नाटककार ने नारी को 'मादा कैक्टस' का प्रतीक माना है। वस्तुत: कैक्टस काटने पर और अधिक हहहहाकर फैलता है और न काटने पर सूख जाता है। अत: कुछ लोगों का यह सामन्ती दृष्टिकोण रहा है, कि नारी भी ताड़ित होने पर सुनियोजित रहती है, ललित होने पर उच्छृंखल हो जाती है। फलत: हानिप्रद हो जाती है। डॉ. लाल की दृष्टि में नारी की वृत्ति कैक्टस के सदृश है --

जब काटो तब हहहहे
बिन काटे कुम्हिलाए
ऐसी अद्भुत नार का
अंत न पायो जाय।[१]

डॉ.सरजूप्रसाद मिश्र लिखते हैं -- पुरुष-नारी के द्वंद्व को यहाँ उभारा गया है और एक प्रतीक का निर्माण किया गया है। इसमें प्रतीकों की भरमार है। कलाकार विवाह के बंधन में बंधकर अपनी कला-साधना नहीं कर सकता। वह प्रेमी तो बन सकता है लेकिन पति नहीं, इस धारणा का मखौल उड़ाने के लिए यह नाटक लिखा गया है।[२]

सूखा सरोवर (सन १९६०)

'सूखा सरोवर' में नये जीवन मूल्यों, विचारधाराओं एवं मान्यताओं के आने से वर्तमान जीवन में जो विसंगतियाँ, संघर्ष और समस्याएँ उत्पन्न हो गई हैं, उनका चित्रण किया है। इन समस्याओं के कारण व्यक्ति और समाज के जीवन में, जो अविश्वास ,आस्थाहीनता,खोखलापन तथा घुटन-सी समा गई है, उनकी ओर

---

१ डॉ.लक्ष्मीनारायणलाल - मादा कैक्टस - भूमिका (प्रथम संस्करण से)
२ डॉ.सरजूप्रसाद मिश्र - नाटककार लक्ष्मीनारायणलाल - पृ.क्र.५८।

संकेत किया है। वैयक्तिक और सामाजिक दोनों ही स्तरों पर मनुष्य का वर्तमान जीवन सूखा है, क्योंकि उसमें प्रेम का अभाव है। साधारण-सी प्रेमकथा के माध्यम से नाटककार ने प्रतीकों का आश्रय ग्रहण कर प्रेम के अभाव में देश के जीवन रूपी सरोवर के सूख जाने की प्रतीकात्मक व्यंजना की है।"[१]

नाटक की कथावस्तु लोककथा पर आधारित है। एक राज्य में अत्यंत मनोरम सरोवर था। वह हमेशा भरा-पूरा रहता था। सारी जनता उस सरोवर की पूजा करती थी। राजा ने एक दिन सारी प्रजा सहित, सरोवर में जल-सम्पूर्ति के लिए, सरोवर के देवता का आह्वान किया। देवता ने प्रकट होकर कहा - "जिस क्षण कोई इस सरोवर में आत्महत्या करेगा, उसी क्षण में इसका जल सूख जाएगा।" उसके बाद उस राजा के छोटे भाई ने राजा को कुचक्र द्वारा पदच्युत कर दिया और स्वयं राजा बना। अब यह वास्तविक राजा राजगद्दी छोड़कर संन्यासी बन गया था। छोटे राजा की कन्या एक सामान्य युवक से प्रेम करती थी। उसका पिता उसका विरोध करता था। एक दिन राजकुमारी दु:खित होकर अपने प्रेमी से न मिल पाने के कारण उसी सरोवर में डूबकर आत्महत्या कर लेती है। इस कृत्य से सरोवर की मर्यादा भंग हो जाती है और वह सूख जाता है। उस नगरी की जनता तृषार्त हो जाती है। राज्य में भयंकर संकट उपस्थित हो जाता है। इसी समय पदच्युत संन्यासी राजा उपस्थित होता है। वह प्रजा से सरोवर देवता की प्रार्थना करने को कहता है। जनता प्रार्थना करती है। आर्त पुकार सुनकर सरोवर देवता प्रकट होता है। वह जनता से एक मनुष्य की बलि माँगता है, जो जनता का सच्चा प्रतिनिधि हो। प्रजा राज्य के प्रतिनिधि राजा को ही इसके उपयुक्त चुनती है, किंतु वह भाग जाता है। ऐसे समय पर संन्यासी राजा अपने को बलि के लिए प्रस्तुत करता है। किंतु इसके पूर्व ही राजकुमारी का प्रेमी, जो पागल हो चुका है, अचानक सरोवर में अपनी बलि दे देता है। जनता समझती है, कि सरोवर देवता पागल की बलि को नहीं स्वीकारेगा। इसलिए संन्यासी राजा अपनी बलि देना चाहता है। ठीक उसी समय सूखे सरोवर में जल स्रोत फूट पड़ता है। चारों ओर

---

१ डॉ. गिरीश रस्तोगी - हिंदी नाटक सिध्दांत और विवेचन - पृ.क्र.१९७।

प्रसन्नता की लहर-सी छा जाती है। पागल प्रेमी की बलि सरोवर देवता स्वीकारता है।

कथावस्तु के माध्यम से लेखक ने कुछ शाश्वत समस्याओं की ओर संकेत किया है। `सूखा सरोवर` मानव की परंपरा ग्रस्तता और स्वार्थपरता की कथा को प्रतीक रूप में प्रस्तुत करता है। मनुष्य जब अपने कर्तव्यों से विमुख होकर संन्यास ले लेता है तो उसके सत् के स्थान पर असत् आ जाता है और परिणामस्वरूप व्यक्ति के अन्तस् का सरोवर सूख जाता है और समाज में विकास की गति अवरुध्द हो जाती है। जब तक हम पुन: अपनी बलि से, अपने दायित्व निर्वाह से प्राचीन आस्था और नये आदर्शों को नहीं स्वीकारते, उस आस्था और आदर्शों की रक्षा के लिए प्रस्तुत नहीं होते, तब तक वह जीवन रूपी सरोवर पुन: रसपूर्ण नहीं होता। नाटक के अंत में संन्यासी राजा और प्रजा संकल्प करते हैं, कि `परंपरा ग्रस्तता को त्याग कर नवीन जीवनमूल्यों ( नाटक में `नया पानी`, `नया जीवन`, `नया सूरज`, नई चंदा द्वारा संकेतित[१]) को स्वीकार करते हुए भावी समाज में ऐसा निर्मम अन्याय नहीं होने देंगे।[२]

सरोवर हमारे अन्तश्चेतना (अंत:करण) का प्रतीक है और जल जीवन के स्वास्थ्य का, जिसमें हमारी आत्मा का निवास है। सत् उस सरोवर की मर्यादा है। जीवन रूपी सरोवर में दिव्यता रूपी रस भरा रहता है। ज्यों ही हम अपने व्यक्तित्व की अक्षमता अथवा कर्म की प्रवृत्ति से उदासीन होकर जीवन के सत् से पलायनवादी प्रवृत्ति स्वीकार कर लेते हैं, त्योंही हमारे जीवन का रस सूख जाता है। इस प्रकार सरोवर जीवन का प्रतीक है। डॉ.ओझा के कथनानुसार `इस नाटक में सरोवर जीवन है, और सरोवर का जल जीवन के स्वास्थ्य का प्रतीक है। आधुनिक प्रणयादि की निस्सारता का प्रतीक है - राजकुमारी की आत्महत्या, जिसके कारण जीवन की वास्तविक रसमयता समाप्त हो जाती है।`[३]

---

१ डॉ.लक्ष्मीनारायण लाल - सूखा सरोवर - पृ.क्र.१२२।

२ डॉ.रमेश गौतम - सातवें दशक के प्रतीकात्मक नाटक - पृ.क्र.४४।

३ डॉ.दशरथ ओझा - हिंदी नाटक उद्भव और विकास - पृ.क्र.४३३।

नाटक के पात्र भी प्रतीकात्मक है। राज्य के भूतपूर्व राजा को हम, जीवन की पलायनवादी प्रवृत्ति अथवा अकर्मण्यता का प्रतीक कह सकते हैं। यह संन्यासी राजा नये उभरते हुए बुध्दिजीवी किंतु निष्क्रिय वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। वह जीवन के संघर्ष से पलायन कर जाता है। छोटा राजा और पुरोहित जीवन के असत् पक्ष के प्रतिनिधि है। छोटा राजा संकीर्ण स्वार्थ, रुढ परंपरा का पोषक तथा वर्तमान शासन-तंत्र का प्रतीक है, जो प्रजा को अपने संकीर्ण स्वार्थ की पूर्ति के लिए जाग्रत नहीं होने देता। यह कुटिल वृत्ति का राजा किसी भी सत् के उद्घाटन के अवसर पर किसी का सामना नहीं कर पाता, अपितु मानवीय दुर्बलता के कारण चुपचाप खिसक जाता है। राजकुमारी आत्मा का प्रतीक है तथा उसका प्रेमी पुरुष रसमयी आत्मा के सत् से मर्यादित व्यक्तित्व का वास्तविक प्रतिनिधि है, जो छोटे राजा के शुष्क जीवन तथा संकीर्ण स्वार्थ के शिकार बनते है। राज्य के पाँच व्यक्ति मूढ, असहाय, भाग्य पर निर्भर, अकर्मण्य, निरीह जनता का प्रतिनिधित्व करते हैं।

विश्वनाथ प्रसाद तिवारी के अनुसार --"सूखा सरोवर" एक उत्कृष्ट गीति-नाटक होने के साथ-साथ एक सूक्ष्म प्रतीक भी प्रस्तुत करता है। इस रुपक को हम यदि सीधी तरह से कहें तो कहेंगे हमारा अन्तस् वह सरोवर है, सत् उस सरोवर की मर्यादा है, जीवन की दिव्यता उस सरोवर का रस है, संन्यासी हमारे व्यक्तित्व की अक्षमता और उदासीन वृत्ति है, नगरी का राजा हमारे व्यक्तित्व का अहंकार और 'पुरुष' हमारे व्यक्तित्व का वास्तविक प्रतिनिधि है।

इस प्रकार नाटक प्रस्तुत अर्थ के साथ ही एक अप्रस्तुत अर्थ की ओर भी संकेत करता है, जो प्रस्तुत से महान्तर है, जिसमें एक व्यापक मानव अस्तित्व आ गया है।[१] इस प्रकार इस नाटक में प्रतीक ही प्रतीक दृष्टिगत होते हैं।

---

१ डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी : छायावादोत्तर हिंदी गद्य - साहित्य - पृ.क्र.१५९।

रक्तकमल (सन १९६२)

' रक्त कमल ' राष्ट्रनिर्माणात्मक तत्वों से भरपूर एक प्रतीक नाटक है, जिसमें स्पष्ट किया गया है, कि स्वतंत्रता के कई वर्ष बीतने पर भी देश में पूर्वापेक्षया अधिक हाहाकार, अनाचार, शोषण तथा संकीर्ण स्वार्थ-वृत्ति व्याप्त है। राष्ट्रदेव अपने अतीत गौरव के धरातल पर नवनिर्माण के लिए छटपटा रहा है, परंतु उसके सम्मुख सूचीभेद्य अंधकार व्याप्त है, तथा कहीं भी नवनिर्माण की आशा दिखाई नहीं देती है।

नाटक का नायक कमल धनी परिवार से संबध्द है। उसकी बहुत बड़ी इंडस्ट्री है, जिसकी देखभाल उसका बड़ा भाई महावीरदास करता है। कमल पाँचवर्ष तक विदेश में उच्च शिक्षा भी प्राप्त कर चुका है, किंतु कमल को धन से घृणा है। उसके मन में, यह बात बैठ चुकी है, कि धनी लोग गरीबों का अस्तित्व मिटा देते हैं। उसका भाई महावीरदास भी इसी प्रकार ही गरीबों के साथ बर्ताव करता है। महावीरदास के समक्ष गरीबों के सुख-दु:ख का कोई मूल्य नहीं है। एक बार उसने अपने बंगले के लिए कन्हैया और अमृता के पिता से दो बीघा जमीन जबरदस्ती हथिया ली और जब वह काफी विरोध करने लगा, तो न जाने कौन-सा षड्यंत्र रचकर उसे मरवा डाला गया। अमृता अपने पिता के बलिदान दिन की स्मृति में प्रतिमंगलवार को उस जमीन पर दीपक जलाया करती। महावीर ने एक बार इस दीपक को ठोकर मारी थी। इन्कम टैक्स की हेरा-फेरी करने के लिए एम.एल.ए.को रिश्वत देकर अपने पक्ष में कर लिया और जब बात खुल गयी, एम.एल.ए.बरखास्त हो गया तो गुरुराम के साथ षड्यंत्र रचकर नो एम.एल.ए. इंद्रजीत को उपचुनाव में विजयी बनाया। उसके स्वागत में पार्टी दी, क्योंकि अब वही उसकी मदद करेंगे।

छोटा भाई कमल अत्यंत भावुक व्यक्ति है। तकनीकी उच्च शिक्षा के लिए पिता ने उसे विदेश भेजा था। विदेशों में, भारत पर किये जाने वाले सारे व्यंग्य उसकी देह में तीर की तरह चुभ जाते हैं। पाँच वर्षों के बाद जब वह स्वदेश लौटता है, तो उसकी अंत:प्रकृति एकदम बदल चुकी होती है। फिर वह अपने बड़े भाई

महावीर और अपनी माँ की इच्छा के विरुध्द समाज सेवा के पथ पर अग्रसर होता है। कमल को शीघ्र ही कुछ स्थानीय लोगों का समर्थन और सहयोग मिल जाता है। वह लोगों में, मजदूरों में नवजागरण के मंत्र फूंकने लगता है। अमृत, कन्हैया और सारंग उसके वफादार साथी है। कमल के आदर्श चरित्र,उच्च विचार और विवेकपूर्ण आचरण के प्रभाव में आकर डाकू बिल्लूसिंह और गुरुराम जैसे, पतित हो गये व्यक्ति भी कमल के भतीजे पप्पू को,कमल दुनिया दिखलाता है और उसे वास्तविक भारतीय जीवन का परिचय कराता है। कमल पप्पू को अगस्त्य कहा करता था। उसने यह नाम कुछ सोचकर रखा था। टिटहरी के अंडे समुद्र बहा ले गया तो उस लाचार टिटहरी की वेदना से द्रवित होकर एक बार अगस्त्य - मुनि ने समुद्र सोख लिया था और टिटहरी के अंडे वापस मिल गये थे। कमल सोचता है, कि पप्पू आने वाली पीढी है। अगर टिटहरी सदृश इन लाचार लोगों की वेदना से उसे अवगत करा दिया जाय,तो 'अगस्त्य' की तरह वह भी उनकी वेदना का समुद्र सोख सकने में समर्थ हो सकता है। अगर 'दूसरों' के साथ उसका परिचय न रहा, तो वह भी पिता की तरह केवल अपने आप तक सीमित रह जाएगा और तब कमल की वह विराट कल्पना साकार नहीं हो पाएगी, ऐसा कमल सोचता है। पिता महावीर को पप्पू का इस प्रकार कमल के साथ हिलना-मिलना पसंद नहीं आता। अत: महावीरदास पप्पू को देहरादून भेज देने का निर्णय लेता है। पप्पू के जाने के पहले कमल स्वयं घर छोड देने का निश्चय करता है और जाने से पहले पप्पू को वह अपना अंतिम संदेश-गुरुमंत्र दे जाता है" मेरे नये अगस्त्य तुम्हें इस विषाक्त समुद्र को सोखना है, ताकि हमें मनुष्य का वह विलुप्त प्रकाश, उसकी समानता, एकता और उसका गौरव वापस मिल सके, नहीं तो यह गरीब बेचारा मनुष्य टिटहरी की तरह इस विषैले समुद्र को कहाँ ,कैसे अपनी चोंच के सहारे सुखा पाएगा।"[१]

---

१ डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल - रक्तकमल - पृ.क्र.११९।

' रक्त कमल ' शीर्षक प्रतीकात्मक है । यद्यपि कमल नाटक के नायक का भी नाम है, तो भी ' रक्त ' विशेषण के संलग्न होने से वह नायक की किसी विशेषता का सूचक नहीं, क्योंकि नायक कमल क्रांति का द्रष्टा और उद्घोषक होकर भी रक्तिम क्रांति नहीं चाहता । नाटक का नामकरण नायक की किसी विशेषता का प्रतीक न होकर, राष्ट्र के अवश्यंभावी स्वर्णिम अरुणोदय का प्रतीक है, क्योंकि नायक कमल को उसके स्वर्णिम अभ्युदय का विश्वास है । उसके विश्वास का आधार स्तंभ है - जनजागृति, राष्ट्रदेव की जाग्रत आत्मा । दूसरी ओर कमल सूर्य के प्रकाश में खिलता है, विकसित होता है, उसी प्रकार नव-जनजागरण से ही राष्ट्ररूपी कमल खिलता है तथा उसका विकास होता है, परंतु वह राष्ट्रकमल पानी से नहीं रक्त से सींचा जाता है, अर्थात कठिन परिश्रम और बलिदान से ही राष्ट्र का निर्माण होता है । यही ' रक्तकमल ' नाम का प्रतीकार्थ है ।

नरनारायण राय के अनुसार - राष्ट्रीय जीवन की वास्तविक समस्या है - जनमानस में जीवन की समझ पैदा करना, जीवन-दृष्टि जगाना, उनके भीतर की सोयी हुई चेतना को जगाना और प्रकाशित करना । इस महान उद्देश्य को लेकर ' कमल ' अंतत: घर की सीमाओं को तोड़कर बाहर निकल जाता है और मानवीय आदर्शों के प्रतीक चरित्र डॉक्टर साहब को यह कहना पड़ता है, " कमल, तेरी वाणी की जय । मैं तेरे पवित्र स्वर में असंख्य कमल खिलते देख रहा हूँ । मेरा रक्त कमल । जब तू बोलता है, तब मेरी आँखों के सागर में एक बहुत बड़ा कमल खिल आता है - सहस्त्र दल कमल । जिसकी पंखुड़ियाँ कश्मीर से कन्याकुमारी और द्वारिका से ब्रह्मपुत्र तक फैली रहती है । "[१] नाटक के शीर्षक के प्रतीकत्व और नाटक की मूल चेतना को प्रकट करने का यह एक काव्यात्मक प्रयास कहा जाएगा ।[२]

---

१ डॉ. लक्ष्मीनारायणलाल - रक्तकमल - पृ.क्र. ११५-११६ ।

२ नरनारायण राय - नाटककार लक्ष्मीनारायण लाल की नाट्यसाधना - - पृ.क्र. ७०-७१ ।

इस नाटक में नाटककार ने, एक नाटक में दूसरे प्रतीकात्मक नाटक की अंत:सृष्टि की है। इस दूसरे नाटक में देश की बिगडी हुई राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक दशा एवं मूल्यहीनता का यथार्थ प्रदर्शन किया है। पराधीनता की बेडियाँ काटकर, स्वाधीन हुए गौरवपूर्ण नवनिर्माण के लिए छटपटाता हुआ, अंत:सृष्ट नाटक का प्रधान पात्र 'देवता', भारत राष्ट्र का प्रतीक है, जो स्वयं अपने मुख से स्वतंत्र भारत की वर्तमान बिगडी हुई दशा का चित्र प्रस्तुत करता है - 'हाँ, मैं वही देवता हूँ। मैं अपना ही रास्ता ढूँढ रहा हूँ .... हमारे बीच इतनी लम्बी गुलामी ने ऐसी हालत पैदा कर दी कि यहाँ कभी कोई क्रांति हो न हो। लोग मेरी ही भीतर आपस में ही लडते रहे .... । मैं अकेला खडा था। उद्देश्यहीन, पथहीन, प्रेरणाहीन। अवसर पाकर उसी क्षण मेरे भीतर के वे सारे सोये हुए भूत-प्रेत-शैतान जगकर खडे हो गए - अलग-अलग प्रांत के भूत, अलग अलग जाति के भूत। सब मुझे तरह-तरह से लूटने लगे - कोई राजा बनकर, कोई अफसर, कोई मेरा मालिक बनकर। सब-के-सब मेरा खून चूसने लगे। मैं चिल्लाने लगा उपनिषद्। बुध्द। विवेकानंद। तिलक ... गोखले... मार्क्स... गांधी... मसीहा... बचाओ.... बचाओ।'[१] इस प्रकार 'रक्तकमल' के अंत:सृष्ट नाटक का पात्र 'देवता' स्वतंत्र किंतु जातिवाद, संप्रदायवाद प्रांतीयता, गुंडागीरी, आर्थिक शोषण, अमीरी-गरीबी, शक्ति तथा सत्ता प्राप्त करने की भूख आदि गुलामी के सारे नासूरों से जर्जर[२], 'स्वस्थ ज्योति के लिए पुकार करते, संकीर्ण धर्म, जाति, भाषा, प्रांत, स्वार्थ के अंधकार में भटकने वाले भूत, प्रेत व शैतानों के हाथों बन्दी, विवश भारत राष्ट्र का प्रतीक है। राष्ट्र देवता के बंधन खोलने को आए हुए ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, देश में सर्वत्र व्याप्त जातिवादी प्रवृत्ति की ओर संकेत करते हैं। इसी प्रकार 'देवता' के बंधन खोलने वाला शुभ्र वस्त्रधारी वृध्द पुरूष महात्मा गांधी के आदर्शों का रुप है। प्रांत वनिता, बेवकूफ तथा पथभ्रष्ट राहगीर, देश में प्रकाश (नवीन चेतना शक्ति) के लिए छटपटाती

---

१ डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल - रक्तकमल - पृ.क्र. ८८-९१-१००।

२ डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल - रक्तकमल - पृ.क्र.८३।

जनता का प्रतिनिधित्व करते हैं।

डॉ. सरजूप्रसाद मिश्र लिखते हैं `रक्तकमल` नई चेतना का प्रतीक है। देश के कमल पढ़-लिखकर या तो पश्चिमी मूल्यों के अंधभक्त बन जाते हैं या अपने वर्ग में सिमट कर परंपरा पालन में लग जाते हैं। देश का हित उनकी चिंता का विषय नहीं होता है। `रक्त कमल` उस समग्रता का बोध कराता है, जो देशवासियों के दृष्टिपथ में कभी नहीं आती। `रक्त कमल` नई पीढ़ी के दायित्व-बोध को रेखांकित कर एक आशावाद का स्वर गुंजित करता है। ओढ़ी हुई आधुनिकता के मुखौटे को उतारकर युवा पीढ़ी देश की प्रगति के रथ को आगे ले जाएँ, यही इस नाटक का संदेश है।[1]

नाटक का नायक कमल देश में नवजागरण का प्रतीक है, जो नाटक का ही नहीं नवयुग का भी नायक है। अपने नायक के संबंध में डॉ.लाल का कथन है - `रक्त-कमल` का नायक `कमल` बिल्कुल मिथ जैसा चरित्र। सर्वथा आदर्श, जिसकी ऐसी अवतारणा मैंने जान-बूझकर इस नाटक में की है।`[2] कमल राष्ट्र देवता की चेतना शक्ति का प्रतीक बनकर आया है। कमल पाँच वर्ष विदेशों में रहकर भारत के अपमानित अस्तित्व के यथार्थ को देख आया है। इसीलिए वह राष्ट्र के सुप्त और विस्मृत प्राचीन गौरव को पुन: जगाना चाहता है। वह भारत की प्राचीन सांस्कृतिक परंपरा से इतना प्रभावित है, कि वह अपने भतीजे पप्पू को अगस्त्य का नाम देकर उसके द्वारा खोई हुई सांस्कृतिक चेतना को पुन: जगाना चाहता है। अंत में वह माँ की ममता और परिवार का मोह छोड़कर राष्ट्र व समाज की चेतना को जगाने के लिए घर से चला जाता है।

अन्य पात्रों में महावीर, शोषण और विषमता फैलाने वाले पूँजीपति वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। महावीर द्वारा अमृता की भूमि छीनना तथा उसके पिता की षड्यंत्र द्वारा हत्या करना, शोषक व स्वार्थी पूँजीपतियों के अत्याचारों

---

१ डॉ.सरजूप्रसाद मिश्र - नाटककार लक्ष्मीनारायण लाल - पृ.क्र.७६-७७।

२ डॉ.लक्ष्मीनारायण लाल - रक्तकमल - पृ.क्र.२१ - भूमिका (यह रक्तकमल) ।

की ओर संकेत करता है। गुरुराम देश में व्याप्त समाज-विरोधी तत्वों तथा विकृत राजनीति का प्रतीक है। नायक कमल के शब्दों में वह आंमीक, जयचंद, तैमुरलंग, सदाशिवराव, अमीरचंद और मीरजाफर का भूत है।[१] जो अपने कुकृत्यों से राष्ट्रदेवता की आत्मा को कचोट रहा है। माँ रूढिवादी धार्मिक विचारधारा का तथा अमृता, कन्हैया और सारंग शोषित किंतु जागृति की ओर उन्मुख जनता का प्रतिनिधित्व करते हैं। डॉ.देसाई जागरुक व बुध्दिजीवी नागरिकों का प्रतीक है, जो सत्य को समझाते तथा ग्रहण करते हैं। वह निर्भीक सत्य व जागृति के अभिनंदक हैं । नए एम.एल.ए. इंद्रजीत को कमल द्वारा खरी-खोटी सुनाने पर डॉ.देसाई कमल का अभिनंदन करते हैं। पप्पू (अगस्त्य) नवीन चेतना शक्ति से संपन्न जागरुक भावी पीढी का प्रतीक है, जिसमें ' बुध्द, अशोक, अकबर, दाराशिकोह और गांधी की पुण्य आत्माएँ बैठी हैं।[२] कमल कहता है --' आज अगस्त्य का काम गरीबी के समुद्र को सोख लेना है , जिसके कारण मनुष्य का अपना विश्वास खो गया है। चारों ओर फैले अंधःकार के समुद्र को पी लेना, जिसमें हमारा प्रकाश खो गया है। अगस्त्य , तुम्हें इस गँदले समुद्र को सोखकर एक नये समुद्र की रचना करनी होगी।'[३]

इस प्रतीक नाटक द्वारा नाटककार ने युगीन सत्य को अभिव्यक्ति दी है।

रातरानी (सन १९६२)

' रातरानी ' नाटक, अर्थ और आदर्श के बीच तीव्रतम संघर्ष उपस्थित करते हुए पति-पत्नी के आपसी संबंधों का विश्लेषण प्रस्तुत करता है। नाटककार ने पति-पत्नी के परस्पर संबंधों का एक सशक्त खाका खींचने का प्रयास किया है।

---

१ डॉ.लक्ष्मीनारायण लाल - रक्तकमल - पृ.क्र.११० ।

२ डॉ.लक्ष्मीनारायण लाल - रक्तकमल - पृ.क्र.११० ।

३ डॉ.लक्ष्मीनारायण लाल - रक्तकमल - पृ.क्र.८५ ।

जयदेव और शाकुंतला नामक एक आधुनिक दम्पति है। एम.कामु.जयदेव एक इंजीनियर का लड़का है। पिता की मृत्यु के बाद जयदेव को एक प्रेस,७५ हजार रुपये और एक बहुत बड़ा बंगला विरासत में मिला है। जयदेव अपने साथियों के साथ जुआ खेलनेवाला, क्लब जानेवाला और नितांत आरामसे जीवन व्यतीत करनेवाला एक आधुनिक युवक है। उसकी पत्नी शाकुंतला अत्यंत भावुक, उदार एवं पति-परायण है। पहले शाकुंतला याने कुंतल का विवाह निरंजन बाबू से तय हुआ था, परंतु कुंतल के पिता दहेज देने में असमर्थ थे, अत: यह संबंध टूट गया था। फिर एक दिन जयदेव के पिता ने कुंतल के पिता से, जयदेव के लिए कुंतल का हाथ माँगा था।

जयदेव और कुंतल के विचारों में बहुत ही फर्क था। कुंतल जैसी पढ़ी लिखी, सुंदर,संगीत की जानकार, गृहस्थी की गाडी चलाने में कुशल एवं पति भक्ति में डूबी नारी को पत्नी के रूप में पाकर भी जयदेव सुखी नहीं है। वह स्वयं को 'अर्थयुग' का पुरुष मानता है। जयदेव का जीवन कुछ ऐसे साँचे में ढला हुआ है, कि वह घर,प्रेस,पत्नी,सबसे अपने भीतर ही भीतर कट चुका है। जीवन जीने के लिए कृत्रिम आकर्षणों की तलाश में भटकता है। दोस्त,पार्टी,क्लब,ताश,जुआ उसके कृत्रिम जीवन के अंग बने हैं। वह अधिक धन पाने के लिए पत्नी को नौकरी करने के लिए बाध्य करता है। प्रेस, घर,पत्नी आदि से वह बहुत दूर चला गया है।

कुंतल श्रध्दा और विश्वास की मूर्ति है। उसमें सरलता और भावुकता के साथ ही त्याग की पूरी क्षमता भी है। वह दया,ममता और सहानुभूति से युक्त है। वह सबके दु:ख में समान रूप से भाग लेना चाहती है। उसके लिए वर्ग का कोई भेद नहीं है। उसकी सहानुभूति प्रेस कर्मचारियों की ओर है। जयदेव और कुंतल के दृष्टिकोणों में अंतर होने के कारण उनका दाम्पत्य जीवन तनापूर्ण है।

जयदेव प्रेस की ओर ध्यान नहीं देता है, प्रेस कर्मचारियों का ख्याल नहीं करता है, अत: धीरे धीरे प्रेस की हालत बदतर हो जाती है। जयदेव प्रेस कर्मचारियोंका बोनस रोक देता है। बोनस और अन्य सुविधाएँ न मिलने के कारण वे हड़ताल कर देते हैं। हड़ताल को दबाने के लिए जयदेव अपने आवारा मित्रों को

प्रोत्साहन देता है। तंग आकर प्रेस कर्मचारी जयदेव पर धावा बोलने पर उतारु हो जाते हैं। तब तक जयदेव पिता की सारी संपत्ति जुए में हार चुका है, अतः उन्हें बोनस देने में असमर्थ है। एक दिन हड़तालियों का जुलूस जयदेव के घर की ओर बढ़ने लगता है, तब कुंतल उन्हें समझाने के लिए दौड़ पड़ती है। वह स्वयं भीड़ को शांत करने जाती है। वह पथराव में फँस जाती है। माथे पर पत्थर लगने के कारण कुंतल घायल हो जाती है। अंत में निरंजन बाबू ही उसे बचाकर लाते हैं। तब सारी भीड़ शांत हो जाती है। केवल कुंतल के कारण ही भीड़ शांत हो जाती है, क्योंकि वह कुंतल प्रेस के हड़तालियों से सहानुभूति रखती थी। मानवीय कर्तव्य को पूरा करने के लिए वह हड़ताल कर्ताओंके नेता की पत्नी की समय-असमय सहायता भी करती थी। वह जयदेव को प्रेरित करती थी, कि वह कर्मचारियों की माँगों पर विचार करके उनके साथ न्याय करे। नाटक में दिखाने का प्रयास किया है, कि मजदूरों के हृदय को षड्यंत्र और दबाव से नहीं वरन प्रेम, सद्भावना और सहानुभूति से जीता जा सकता है।

'रातरानी' एक प्रतीक नाटक है। नाटककार ने नाटक की नायिका कुंतल को 'रातरानी' का प्रतीक मानकर कहना चाहा है, कि जिस प्रकार रातरानी अपनी सुगंध से संपूर्ण वातावरण को सुवासित तथा माधुर्यपूर्ण रखती है, उसी प्रकार नारी भी अपने कोमल गुणों से सबको आनंदित करती है। नाटक की नायिका कुंतल में उन सभी कोमल गुणों का विकास हुआ है, जो रातरानी की तरह सुख प्रदान करते हैं। [१]

डॉ. रामजन्म शर्मा लिखते हैं - जिस प्रकार 'रातरानी' अपनी सुगंध से सबको सुवासित करती है, उसी प्रकार औरत अपने प्यार, त्याग और सेवा की भावना से पुरुष के जीवन को सुवासित करती है। [२] लेखक ने नारी को इस नाटक में महत्वपूर्ण स्थान दिया है।

---

१ डॉ. रमेश गौतम - हिन्दी के प्रतीक नाटक - पृ.क्र.२७८।

२ डॉ. रामजन्म शर्मा - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक - पृ.क्र.२३९।

डॉ.कमलिनी मेहता के अनुसार - नाटककार ने रातरानी में आदर्श, प्रतीक और यथार्थ की ऐसी त्रिवेणी बहाई है, जिसके जल में कहीं भी मिलावट नहीं दिखती।[१]

डॉ.सरजूप्रसाद मिश्र लिखते है -- नाटककार लाल, नारी का कार्यक्षेत्र गृहस्थी तकही मानते हैं। `घर` को बनाए रखने पर उनका बहुत बल है। वे मानते हैं - पत्नी घर रुपी बगीचे की रातरानी हैं, जो अपने स्नेह से पति के जीवन में सुख,संतोष और तृप्ति का झरना प्रवाहित कर देती है।[२]

नाटककार ने नारी को फुलवारी के रुप में प्रस्तुत करना चाहा है, जो घर की शोभा ही नहीं बढ़ाती,तो उसे संपन्न व्यक्तित्व का दान भी देती है। तभी तो माली अपनी स्वामिनी से कह उठता है, `विश्वास करो, माँ। जब तुम दु:खी होती हो,तो मुझे ऐसा लगता है, कि फुलवारी के सब फूल मुर्झा गये हैं। भैया की रातरानी का वह कुंज तब उदास हो जाता है। और जब तुम प्रसन्न रहती हो न, तो फुलवारी मारे महक के गमकने लगती है।`[३] नाटककार ने कुंतल का संपूर्ण व्यक्तित्व `रातरानी` के प्रतीक से जोडने की कोशिश की है -- `हाँ, रातरानी के पुष्प छोटे हैं, कोमल हैं, तभी वे शाश्वत हैं, क्योंकि सभी इनका वरण कर लेना चाहते हैं।`[४] कुंतल का बगीचा उसके घर का अविभाज्य अंग है। कुंतल और माली के लिए ये पेड पौधे परिवार के सदस्यों की तरह हैं। कुंतल भी मानो जयदेव के जीवन की फुलवारी ही है।

जयदेव तनेजा लिखते हैं - घर में लगा हुआ बगीचा कुंतल का ही प्रतीक है, जिसमें चहक-महक, समृध्दि,सुगंध और नये जीवन का उद्घाटन है। `नंदनवन की इंद्राणी` कुंतल ही नाटक की रातरानी है। वह सभी दु:खों को अपने ऊपर लेकर जयदेव को चिंताओं से मुक्त कर देती है। माली और फुलवारी के प्रति उसका

---

१ डॉ.कमलिनी मेहता - नाटक और यथार्थ - पृ.क्र.३४४।

२ डॉ.सरजूप्रसाद मिश्र - नाटककार लक्ष्मीनारायण लाल - पृ.क्र.७९।

३ डॉ.लक्ष्मीनारायण लाल - रातरानी - पृ.क्र.१०९।

४ डॉ.लक्ष्मीनारायण लाल - रातरानी - पृ.क्र.८०।

व्यवहार, उसकी सहृदयता, कोमलता और सहानुभूति का द्योतक है।`[1] रातरानी का माली प्रकृति-प्रेम का प्रतीक है, जिसकी भावनाओं का केन्द्रबिंदु है - कुंतल। अभिप्रेत कथ्य को प्रभावशाली ढंग से व्यंजित करने के लिए नाटककार ने रातरानी, कनेर, केशपुष्प, फुलवारी आदि प्रतीकों का आश्रय ग्रहण किया है।[2]

नाटक के अन्य पात्र विविध रूपों में सामने आते हैं। दयालु, सहृदय और देवोपम गुणोंवाले इंजीनियर साहब का पुत्र जयदेव एक पूँजीपति के रूप में सामने आता है। उसमें पूँजीपति के सभी गुण या दुर्गुण विद्यमान हैं। उसके लिए यह युग मात्र` अर्थयुग` है। निरंजन बाबू एक आदर्शवादी युवक के रूप में प्रस्तुत होते हैं। सुंदरम उन्मुक्त और सहृदय नारी है। योगी और प्रकाश जयदेव के, जुआरी, कायर और कामुक मित्रों के रूप में सामने आते हैं।

नाटक में जीवन की कुछ विडंबनाओं की ओर संकेत किया है। नरनारायण राय लिखते है` जीवन में शुभ तब आता है, जब प्रसन्नता होती है, जीवन सहज भाव से प्रवहमान होता है।` यहाँ जयदेव ऐसी स्थितियाँ उत्पन्न करता है, कि कुंतल के मन पर घाव हो जाते हैं। उसके जीवन प्रवाह में गतिरोध आ जाता है। तब वह उदास हो जाती है और फुलवारी से जीवन का शुभ पंछी उड जाता है। यही नाट्य विडंबना` रातरानी` में दिखाई देती है। खिली हुई फुलवारी जीवन की चेतना का प्रतीक बन उठती है।`[3]

` रातरानी` में संकेतों द्वारा गहरी अर्थ व्यंजना करने वाले संभाषण हैं —

निरंजन :` आप की फुलवारी में लाल कनेर तो होगा ?

कुंतल : जी हाँ, एक है।

निरंजन : और रातरानी ?

कुंतल : वह भी है - पर दोनों बहुत दूर दूर हैं।`[4]

---

१ जयदेव तनेजा - आज के हिंदी रंगनाटक - परिवेश और परिदृश्य - पृ.८८।

२ डॉ.रमेश गौतम - हिंदी के प्रतीक नाटक - पृ.क्र.२७९।

३ नरनारायण राय - नाटककार लक्ष्मीनारायण लाल का ` नाट्यसाधना` पृ.क्र.६२।

४ डॉ.लक्ष्मीनारायण लाल - रातरानी - पृ.क्र.६८।

यहाँ कुंतल और जयदेव के बीच की दरार की ओर संकेत है।

कुंतल के एक भाषण में हॉस्पिटल में रात के पिछले पहर स्वप्न देखने की बात है। इस सूचित स्वप्न में सुनहले कागज के फटे हुए पन्ने जयदेव की धनलोलुपता की ओर संकेत करते हैं, तो फूलों की सेज सुखी दाम्पत्य जीवन की आकांक्षा को प्रकट करनेवाला प्रतीक है।[2] एक बार माली सुंदरम से कहता है - "ये तीनों पेड़ मैंने टुंजहे के हाथ नहीं पड़ने दिये। ये तीनों पेड़ मेरे मालिक के हाथ के लगाए हुए हैं।"[3] यहाँ हमें संकेत मिलता है, कि जयदेव के पिता ने जो संपत्ति छोड़ी है, उसकी रक्षा करना, माली अपना कर्तव्य समझता है। वह, जयदेव, कुंतल और फुलवारी तीनों को सुरक्षित रखने की कोशिश करता है। कुंतल 'ब्राइडल क्रीपट' की ओर इशारा करके मनुष्य की विडंबना की ओर संकेत करती है। वह कहती है "ब्राइडल क्रीपट वर्षभर तैयारी करके भी केवल पंद्रह दिनों तक फूलती है। परंतु मनुष्य सदा कार्य व्यस्त रहता है, सदा तैयारी में रहता है, पर फुलता, सुगंध बिखेरता नहीं है।'

नाटक में लेखक ने गीतों का भी उपयोग, प्रतीकों के रूप में किया है। 'बाँसुरी का अकेला मधुर संगीत' अनायास ही कुंतल का प्रतीक बनकर उसके चरित्र का उद्घाटन करता है। प्रारंभिक गीत साभिप्राय है, जिसमें संपूर्ण नाटक की सांकेतिक व्यंजना अंतर्निहित है। दूसरे अंक के पहले दृश्य में माली का जो गीत है वह कुंतल की मानसिक स्थिति की ओर संकेत करता है।

इस प्रकार इस नाटक का शीर्षक, पात्र, संवाद, गीत आदि में प्रतीकात्मकता दिखाई देती है।

---

१ डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल - रातरानी - पृ.क्र.९९।

२ डॉ. सरजूप्रसाद मिश्र - नाटककार लक्ष्मीनारायण लाल - पृ.८३।

३ डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल - रातरानी - पृ.क्र.८९।

सुंदर रस (सन १९६२)

' सुंदर रस ' नाटक हास्य प्रधान है। आज के मध्यम वर्ग में जो सुंदर होने के प्रति लालायित हैं, उन पर व्यंग्य पूर्ण आघात किया गया है। आज का मनुष्य प्राकृतिक सौंदर्य को खोकर कृत्रिम सौंदर्य की ओर अग्रसर होने की चेष्टा करता है, जिससे वह स्वयं अपना मानसिक संतुलन खो देता है। आज का मानव सौंदर्य की मिथ्या भ्रांति में पड़कर अपनी नैसर्गिक सौंदर्य गरिमा को छोड़ता जा रहा है, तथा बाहरी एवं कृत्रिम प्रसाधनों से अपने को सुंदर दिखाने के प्रयास में, सहज स्वाभाविक सुंदरता को खोकर झूठे अहं का शिकार होता जा रहा है। [१]

नाटक के प्रधान पात्र हैं पण्डितराज। ये न्याय, व्याकरण और आयुर्वेद के प्रकाण्ड पंडित हैं। वे कार्य और चरित्र तथा भावना और अंत:करण के सौंदर्य के पुजारी हैं। वे वर्तमान जीवन की तड़क-भड़क तथा दिखावटी साज - सज्जा से कोसों दूर हैं। उनके पास दो बालक विद्या ग्रहण करने आते हैं। शक्तिदेव और जैनाथ नामक दो बालकों को, पंडित जी विद्यादान के साथ साथ विनय, विवेक, सदाचार, शिष्टाचार एवं कर्म-सौंदर्य की शिक्षा, तथा मानसिक सद्गुणों एवं इंद्रिय संयम से ही सुंदर बनने का प्रेरणाप्रद उपदेश देते हैं। एक बार दोनों शिष्यों द्वारा सुंदर रस की याचना करने पर वे उन्हें समझाते हुए कहते हैं ' सुंदर होने की दवा चाहते हो ? कुछ ज्ञान भी है तुम लोगों को ? तुम लोक ब्रह्मचर्या श्रम में हो। विद्या शास्त्र ही तुम्हारा सौंदर्य है। अखंड ब्रह्मचर्य का पालन ही तुम्हारे लिए एकमात्र औषधि है। ' [२]

देवी माँ नामक, पंडितराज की पत्नी, अत्यंत कुरूप है। पंडितराज, पत्नी को, उसकी कुरूपता पर होनेवाली मानसिक वेदना से बचाने के लिए, एक आयुर्वेदिक रस का निर्माण करते हैं। उस रस का नामकरण करते हैं ' सुंदर रस '।

---

१ डॉ. गिरीश रस्तोगी - हिंदी नाटक सिध्दांत और विवेचन - पृ.क्र.३३०।

२ डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल - सुदर रस - पृ.क्र.५७।

पंडितराजकी बदसूरत और बददिमाग पत्नी धीरे धीरे सुंदर व स्वस्थ हो जाती हैं। ' सुंदर रस ' की बिक्री बढ़ने लगती है। पंडितराज की आर्थिक स्थिति सुधर जाती है। पंडित राज की पत्नी में धन, वैभव एवं प्रतिष्ठा की भूख जग जाती है। वह अपने पति को आधुनिकता कीभीड में शामिल होने के लिए प्रेरित करने लगती है। वकील केदार बाबू उषा नामक लड़की के चक्कर में पड़कर अपने को सुंदर बनाने के लिए सुंदर रस की तलाश में आते हैं। वे सुंदर न होने पर पंडित जी पर मुकदमा चलाने की घोषणा करके चले जाते हैं। पंडित जी के दो शिष्य जैनाथ और शक्तिदेव भी सुंदर रस को चुपके से इसलिए पीते हैं, कि पंडितजी की साली बीना उनसे प्यार करे। के.सी.भट्टाचार्य सुंदर रस की वास्तविकता जान जाने पर उसे लौटाने आते हैं। अत: पंडित जी की आत्मा असत्य के इस बोझ को ढो सकने में असमर्थ होती है। अत: वे रहस्योद्घाटन कर देते हैं, कि ' इस सुंदर रस से वस्तुत: कोई सुंदर नहीं होता, इसके विधिवत् सेवन से हृदय एवं मस्तिष्क पर ऐसा प्रभाव अवश्य पड़ता है, कि पीने वाला अपने आप को सुंदर समझने लगता है। '[१] पंडितजी की पत्नी देवी माँ को भी जब सुंदर रस की वास्तविकता का ज्ञान होता है, तब वह कहती है " सुंदर रस का इतना विकार। चरित्र का इतना पतन। वास्तव में यह रस किसी को सुंदर नहीं बनाता। सुंदर से तात्पर्य, कर्म और चरित्र से सुंदर। भावना और अंत:करण से सुंदर।"[२]

नाटककार शृंगारवाली सुंदरता के स्थान पर मानसिक, आंतरिक सुंदरता पर जोर देना चाहता है। बाह्य सुंदरता हमें आडंबर एवं मानसिक विकृतियों की ओर ले जाती है। यह हमें आधुनिक अवश्य बनाती है, किंतु आंतरिक रिक्तता का मूल्य लेकर।

पंडितराज हृदय, मन व आत्मा की सद्वृत्तियों से, जीवन में प्रवाहित होने वाले संयम और सदाचार से प्रसूत भारतीय सौंदर्य के उपासक रूप में सम्मुख आते हैं।

---

१ डॉ.लक्ष्मीनारायण लाल - सुंदर रस - पृ.क्र.७८।

२ डॉ.लक्ष्मीनारायण लाल - सुंदर रस - पृ.क्र.८२।

देवी माँ द्वारा इंग्लिश वेशभूषा में अपने आपको हठात् सुसज्जित करने पर पंडितराज एक ऐसी घुटन का अनुभव करते हैं, कि उसे सहन नहीं कर पाते और देवी माँ से कहते हैं --` तुमने मुझे विवश किया देवी। साग्रह तुमने मुझे ये कपड़े पहनाए। ये कपड़े मुझसे नहीं पहने जाते। ये मेरे संस्कार के विरुध्द हैं। मेरी शक्ति और परंपरा के विरुध्द हैं।`[1] इस प्रकार पंडितराज उन भारतीय संस्कारों और आदर्शों के प्रतीक हैं, जो आज भी अनुकरणीय हैं। पंडितराज की पत्नी देवी माँ पहले कृत्रिम सौंदर्य गर्वोन्माद की प्रतीक बनकर सामने आती है। दोनों शिष्य जैनाथ और शक्तिदेव कृत्रिम सौंदर्य प्रदर्शन में अंधी बनी हुई आज की पीढ़ी के प्रतीक हैं। दोनों शिष्य नई पीढ़ी के प्रतिनिधि हैं, जो कृत्रिम सौंदर्य के पीछे भटकते हैं। पंडितराज की साली बीना वास्तविक सौंदर्य के रहस्य को पूर्णत: समझने के नाते इस विलायत प्रभाव से सर्वथा अनभिज्ञ रहती है। वह आधुनिक युग की नवीन सौंदर्य दृष्टि की परिचायिका है।

दर्पन (सन १९६४)

दो विपरीत ध्रुवों के बंधन और दबाव में सतत संघर्ष करती हुई तनावग्रस्त नारी को केन्द्र में रखकर लिखा गया, यह एक यथार्थवादी नाटक है। इसमें नाटककार ने प्रवृत्ति-निवृत्ति के संदर्भ में विसंगतियों से परिपूर्ण मानव जीवन की नियति को देखा है। नाटककार के अनुसार` दर्पण ` केवल मनुष्य का है और वह भी मनुष्य के हाथ में[2] किंतु डॉ. लाल विरचित ` दर्पन ` है, जो वर्तमान जीवन की उन विसंगतियों एवं जटिलताओं को प्रतिबिंबित करता है। यहाँ नाटककार ने यह भी स्पष्ट किया है, कि प्रत्येक कलाकार का अपना दर्पण अर्थात एक विशिष्ट प्रेरणा-बिंदु होता है, जिस पर स्थित होकर वह जीवन को प्रतिबिंबित करता है।

---

१ डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल - सुंदर रस - पृ.क्र.६४।

२ डॉ.लक्ष्मीनारायण लाल - दर्पण - पृ.क्र.४ (चतुर्थ संस्करण)।

यही बात नाटककार ने ` दर्पन ` या ` पूर्वी ` के जीवन के प्रतीकात्मक निदर्शन द्वारा, सफलतापूर्वक अभिव्यंजित की है।

` दर्पन ` जब तीन साल की थी, तब घरवालों ने उसकी जन्मपत्री बनवाई। वह जन्मपत्री अद्भुत थी। वह परिवार के लिए प्रतिकूल मानी गयी अत: पाँच वर्ष की अवस्था में ही, ` दर्पन ` बौध्द मठ में दान कर दी गई। बाद में वह एक भिक्षुणी सेविका के रूप में घुम्मा, दार्जिलिंग के बौध्द मठ में रोगियों की सेवा शुश्रूषा करती रही। बनारस विश्वविद्यालय से उसने बी.एस.सी.पास किया। उसका अपना एक व्यक्तित्व है और अपने विचार भी। अत: लामा महाराज से उसकी लड़ाई, इस बात को लेकर हो जाती है, कि परिवर्तनशील सत्य के साथ-साथ बौध्द मठ की पुरानी रूढ़ियाँ भी बदलनी चाहिए। वह सोचती है, कि मानवता की सच्ची सेवा तो प्रेम है। अत: उसके मन में हमेशा द्वंद्व चलता रहता कि, ` मानवता की सेवा करूँ या रूढ़िवाद में जकड़ी रहूँ `। इसी द्वंद्व में वह बौध्द मठ छोड़कर न जाने कहाँ कहाँ घूमती रही। हरिद्वार, हृषीकेश, रामेश्वर, कलकत्ता, काशी, बंबई आदि। हरिद्वार में उसने दण्डी साधु के कोढ़ का उपचार किया और उसे स्वस्थ किया। फिर वहाँ से गायब हो गयी। दण्डी अपनी उपकारकर्त्री माँ दर्पन को खोजता रहा। भिक्षुणी के जीवन में दर्पन को असहजता-सी लगी। उसने अपना व्यक्तित्व बदल लिया। अब वह ` पूर्वी ` बन गयी। एक यात्रा के दौरान उसकी भेंट हरिपदम से हो गयी। हरिपदम को ट्रेन में ही हैजा हो गया। लोगोंने रोगी हरिपदम को स्टेशन पर उतार दिया। सहज अभ्यासवश दर्पन भी साथ ही उतर गयी। सेवा-शुश्रूषा से उसने हरिपदम को स्वस्थ किया। हरिपदम उसे बनारस में अपने घर ले आया। ` पूर्वी ` को वहीं नौकरी मिल गयी। धीरे धीरे दोनों के बीच प्रेम पनपा और वे विवाह करने के निश्चय पर आये। हरिपदम के पिताजी ने पहले विरोध किया, परंतु बाद में वे तैयार हो गये। ` पूर्वी ` बहुत ही खुश हो गयी। वास्तव में वह भिक्षुणी थी।

BARR. BALASAHEB KHARDEKAR LIBRARY
SHIVAJI UNIVERSITY, KOLHAPUR

एक दुलहिन और प्रेयसी का अनुभव उसके लिए नया था। इसलिए वह समस्त अनुभवों को जल्दी से जल्दी और पूरा का पूरा भोग लेना चाहती थी। एक दिन उसकी होनेवाली ननद-ममता उसे दुलहन का शृंगार करती है और दर्पण दिखाती है, तो वह दर्पण को नीचे पटक कर हथेलियों में अपना चेहरा छुपा लेती है। वह अपने पूर्व-जीवन का स्मरण तक नहीं करना चाहती। वह समझती है, कि वह जिस जीवन को भोग रही है, उस भोग में उसका पूर्व-जीवन बाधक हो जाता है। इसीलिए वह सबसे अपना असली परिचय और व्यक्तित्व छिपाती है, और अपने उस व्यक्तित्व को अपनी सगी बहन के प्रतिबिंब में ढाल देती है पर यह सब अधिक काल तक नहीं चल पाता। किसी पत्रिका में प्रकाशित उसके लेख और छपे चित्र को लेकर दण्डी साधु वहाँ आ धमकता है। दण्डी के बार बार कहने के बावजूद `पूर्वी` अपने उस व्यक्तित्व को नकारती रहती है। इसके बाद यों ही हरिपदम दर्शन को, उसके दार्जिलिंग के पते पर पत्र डालता है। उस पत्र को पाते ही वहाँ के मठ का सबसे पुराना आदमी आ जाता है। इस बार `पूर्वी` इन्कार नहीं कर पाती, कि वह `दर्शन` नहीं है। उसे सत्य का स्वीकार करना पड़ता है। तब वह अपना कमरा भीतर से बंद कर लेती है। दरवाजा जब खुलता है, तो `पूर्वी` `दर्शन` के वेश में, गेरुएँ वस्त्र में बाहर आती है। हरिपदम से वह जाने की अनुमति माँगती है। हरिपदम उसे उसी रूप में भी स्वीकारने को तैयार होता है, परंतु दर्शन अपने निर्णय पर दृढ रहती है। वह हरिपदम से कहती है,` बुध्द ने पहली भिक्षा यशोधरा से माँगी थी, आज मैं पहली भिक्षा तुमसे माँगती हूँ। दर्शन आज भिक्षुणी हुई है।` [१]

नाटक में नाटककार ने नायिका के द्वारा निवृत्ति और प्रवृत्ति के बीच का द्वंद्व दिखाया है। `दर्शन` निवृत्ति है, तो `पूर्वी` प्रवृत्ति। दर्शन और पूर्वी की यह लड़ाई आज की ही नहीं, हर काल की और हर देश की है। मानव मन में स्थित सांसारिक सुखोपभोग की लालसा तथा वैराग्य के बीच चुनाव के द्वंद्व को नाटककार ने, तीव्रता के साथ प्रस्तुत करते हुए, मानव की अपने आप से पहचान

---

१ डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल - दर्शन - पृ.क्र.७५ (चतुर्थ सं.)

करायी है ।`[१] अपने अपने चेहरे को पहचान मैं के लिए दर्पण की आवश्यकता है । जो दर्पण में निहारते नहीं, वे अपने ही चेहरे से अपरिचित होते हैं । अपने प्रतिबिंब को दर्पण में निहारना अपने व्यक्तित्व की पहचाने करना है । नाटक की ` पूर्वी ` भी अपना, दुल्हन बना हुआ रूप दर्पण में निहारती है, तब चौंक जाती है, क्योंकि तब उसे आत्मसाक्षात्कार हो जाता है । अत: वह दर्पण नीचे पटक कर अपना चेहरा छुपा लेती है ।

नाटक की नायिका ` दर्पन ` प्रतीक रूपमें सामने आती है । ` पूर्वी ` को सत्य से भय लगता है । झूठ उसके लिए रुचिकर है क्योंकि झूठ के आवरण में ही उसका ` दर्पन ` रूप छिपा हुआ है । इस प्रकार जीवन की प्रतीक ` पूर्वी ` व ` दर्पन ` एक ही है, अर्थात् एक ही व्यक्तित्व के दो पहलू । ` पूर्वी ` में त्याग, तपस्या व निष्ठा है और जीवन को इंद्रधनुषी रंगों में जीने की ललक है, तो दर्पन का काम जीवन को विराग के ही स्तर पर देखना और ढोना है । इस प्रकार एक प्रवृत्ति है और दूसरी निवृत्ति । जीवन की इन विसंगतियों को नाटककार ने दर्पण दिखाया है ।

अन्य पात्रों में भी प्रतीकात्मकता दिखाई देती है । हरिपदम सहज मानवीय जीवन का प्रतिनिधित्व करता है । पिताजी रूढिवादी होते हुए भी वास्तविक और यथार्थवादी व्यक्ति हैं । सुजान नयी पीढी के भावुक युवकों का प्रतिनिधित्व करता है ।[1]

नाटक के संवादों में नाटककार ने बिंब और प्रतीक योजना के माध्यम से लक्षणा पैदा करने की कोशिश की है । ` पूर्वी ` अपने नये रूप को जीवित रखना चाहती है पर उसके अंतस् में बैठी हुई ` दर्पन ` उससे उसकी मानसिक विभीषिका को प्रकट करवा लेती है । हरिपदम के पूछने पर ` पूर्वी कहती है -- ` सच दिखे, वह मेरे लिए दर्पन ही है । मुझे ऐसा लगता है, मानो मेरी चारों

डॉ. रमेश गौतम - हिन्दी के प्रतीक नाटक - पृ.क्र.२८७ ।

और कोई दर्पन खिंचा हो और मैं उसी में चुपचाप बैठी हूँ .... मैं उसके परे एक नीला आकाश देखने लगती हूँ, जिसमें सितारों की एक नाव चल रही है। कभी वह नाव सहसा टूट जाती है .... आँधी तब हाहाकार कर हँसती है।[१] नाटककार ने इन प्रतीकात्मक शब्दों में पूर्वी के मन:स्थित अपने भावी जीवन की विभीषिका को सजीव अभिव्यक्ति दी है।

'दर्पन' को बचपन में ही कुंडली देखकर जबरन भिखारिणी बनाया था। अत: वह अब 'पूर्वी' बनकर इस जबरन थोपे गये व्यक्तित्व को अपने से अलग करने के लिए संघर्षरत है। वह अपने अतीत, और 'दर्पन' के प्रतीक रूप में बची अपनी डायरी को जलाती है, तब उसके भाषण में 'पूर्वी' के मन की जलन और प्रतिशोध की लपटें दर्शक - पाठक के मन को भी झुलसा देती है, "मेरा पीछा करने वाली। तू नहीं जानती, मैं क्या हूँ। मैं सोचती थी, तू खत्म हो गयी है, पर तू इस कदर मेरे पीछे लगी है। अपराधी ... निर्मम...हत्यारी। तुझे अब जिंदा नहीं रहने दूँगी। मैं हूँ नियंता, अपने इस जीवन की। तेरा यह जड़ अस्तित्व मैं अब नहीं रहने दूँगी।"[२] फटे हुए कागजों और चित्रों के ढेर में आग लगा देती है -- 'जा, अपनी इस चिता की आग में भस्म हो जा। तेरा कोई चिह्न नहीं... कोई स्मृति नहीं, कोई पहचान नहीं।'[३] तमाम धब्बे और निशानों को मिटाकर, राख में पानी डालकर वह आश्वस्त भाव से कहती है 'मिट्टी पलीद कर दी।' वह हँसती है, परंतु शीघ्र ही उसे लगता है कि 'कहानी खत्म नहीं हुई, कहानी तो यहाँ से शुरू हुई।'[४] वह सुजान से प्रतीकात्मक रूप से अपनी ही कहानी कहती है, "एक चिड़िया थी ... एक बिल्ली थी... एक जंगल था ... जंगल में एक राजकुमार आया.... चिड़िया उसके कन्धे पर आकर बैठ गई ... बोली, मेरे संग खेलो ... जंगल हँसने लगा। बिल्ली रोने

---

१ डॉ.लक्ष्मीनारायण लाल - दर्पन - पृ.क्र.१८।

२ डॉ.लक्ष्मीनारायण लाल - दर्पन - पृ.क्र.४४।

३ -वही- पृ.क्र.४४।

४ डॉ.लक्ष्मीनारायण लाल - दर्पन - पृ.क्र.४७।

लगी। जंगल हँसने लगा और चिड़िया ...। फिर जंगल में आग लग गई और वह आग लगी कैसे ? उसी चिड़िया ने लगाई, ठीक है न।"[1] इस कहानी में चिड़िया स्वयं पूर्वी है। बिल्ली-दर्पन ,राजकुमार - हरिपदम और जंगल उसका संसार है। 'पूर्वी' को सदैव भय रहता है कि वह स्वयं उसे जलाकर राख कर देगी। विभ्रम की-सी अवस्था में पूर्वी को लगता है, जैसे उसके कानों में कोई रो रहा है। यह वस्तुत: उसके अंत:करण की 'दर्पन' ही है।

'दर्पन' की 'पूर्वी' दर्पण से घबराती है। हरिपदम की बहन ममता 'पूर्वी' को दुल्हन के रूप में सजाकर छबि निहारने के लिए सके हाथ में दर्पन देती है। तब देखते - देखते आईना उसके हाथ से गिरकर टूट जाता है। इस प्रसंग में प्रतीकात्मकता है। 'पूर्वी' अपने आप को देखना नहीं चाहती है। अपनी आँखों से ओझल हो जाना चाहती है। यहाँ दर्पण मनुष्य के यथार्थ का प्रतीक है।

नाटक में और एक प्रसंग ऐसा है, जिससे कुछ संकेत मिलता है। पूर्वी पुराने कागजों को जलाते वक्त घर का दरवाजा बंद कर लेती है और घर के बाहर ये कागज जलाती है। तब सुजान कहता है," फागुन में हवा तेज बहती है।ये फटे हुए कागज चारों ओर बिखरने लगते हैं।"[2] इस पर पूर्वी कहती है, "देखो न, तभी मैंने दरवाजा भी बंद कर लिया था, ताकि फटे हुए कागज के टुकड़े घर के अंदर उड न जाएँ।"[3] यहाँ संकेत मिलता है कि 'पूर्वी' अब दर्पन के रूप को घर में लाना नहीं चाहती है। बाहर ही नष्ट करके आना चाहती है। 'दर्पन' के लिए हरिपदम के घर का दरवाजा बंद करना चाहती है।

---

१ डॉ.लक्ष्मीनारायण लाल- दर्पन - पृ.क्र.४६।

२ - वही - पृ.क्र.४४।

३ डॉ.लक्ष्मीनारायण लाल - दर्पन - पृ.क्र.४५।

इस प्रकार यह 'दर्पन' समाज का दर्पण है। मानव-मन का दर्पण है। मानव-मन में प्रवृत्ति और निवृत्ति में हमेशा द्वंद्व चलता रहता है। इस नाटक में इन्हीं प्रवृत्तियों की स्थिति को अभिव्यक्ति देकर, दर्पण दिखाकर मानव जीवन की इस समस्या का समाधान प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

सूर्यमुख (सन १९६८)

'सूर्यमुख', महाभारतकालीन पात्रों एवं प्रसंगों के माध्यम से आधुनिक युगबोध (संशय, द्वंद्व, विरोध, विद्रोह) को प्रस्तुत करता है। इस नाटक में कृष्ण पुत्र प्रद्युम्न और कृष्ण की अंतिम पत्नी वेनुरती का प्रेम दर्शाया है। प्रेम के इस पौराणिक कथानक को नाटककार ने आधुनिक परिवेश में रुपायित किया है। तथा इसमें द्वारिका के नष्ट होने की कथा को विभिन्न प्रसंगों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है।

'सूर्यमुख' में महाभारत-युध्द के बाद की घटनाओं को आधार बनाया गया है। नाटक की कथावस्तु से स्पष्ट होता है, कि महाभारत के पूर्व कृष्ण ने वेनुरती से विवाह किया था, परंतु वेनुरती और प्रद्युम्न एक-दूसरे से प्रेम करने लगे थे। कृष्ण को इस बात से बड़ी ग्लानि और निराशा हुई थी। महाभारत के युध्द के बाद द्वारिका के सारे सैनिक भोगविलास में डूब गये थे। द्वारिका का वातावरण ही एकदम बदल गया था। राजा उग्रसेन मृत्युशय्या पर पड़े हुए थे। ऐसे में ही एक दिन विरक्त भाव से बाहर निकले हुए कृष्ण को, वन में सोया देखकर मृग के भ्रम से जरा नाम के व्याध ने तीर से मार डाला। कृष्ण की मृत्यु के बाद युध्द से लौटी नारायणी सेना तीन खेमों में बँट गयी। प्रद्युम्न नागकुण्ड की पहाड़ियों में आत्म-निर्वासन का दण्ड भोग रहा था। इधर द्वारिका में साम्ब और बभ्रु सत्ता हथियाने के लिए राजनीति में उलझे हुए थे। द्वारिका प्रतिदिन विनाश के कगार की ओर बढ़ती जा रही थी। दक्षिण दिशा से निरंतर

समुद्र द्वारिका की भूमि को निगलता जा रहा था। समुद्र से द्वारिका की रक्षा का कोई उपाय नहीं किया जा रहा था। उग्रसेन बीमार, कृष्ण मृत, प्रद्युम्न निर्वासित, साम्ब और बभ्रु सत्ता-षड्यंत्र में लीन, सैनिक भोगविलास में लीन थे। अत: द्वारिका की ओर किसी का ध्यान न था। कृष्णने मृत्यु के पूर्व ही द्वारिका के नष्ट होने की कल्पना कर ली थी इसलिए उसने अर्जुन को संदेशा भिजवा दिया था, कि वे आकर उसके महल की सोलह हजार रानियाँ और सात महारानियों को सादर हस्तिनापुर ले जायें। यहाँ द्वारिका की स्थिति अत्यंत भयानक हो गयी थी। यह स्थिति देखकर एक बार व्यासपुत्र, प्रद्युम्न से नागकुंड में मिलते हैं और वेनुरती को भूलकर द्वारिका को स्मरण करने, द्वारिका का उध्दार करने की बात कहते हैं। उसके पीछे ही वेनुरती प्रद्युम्न के पास पहुँचती है। वह प्रद्युम्न को अपने साथ रथ में बिठाकर द्वारिका वापस ले जाती है। वापस लौटे हुए प्रद्युम्न का हर कोई तिरस्कार करता है, कि उसने धर्म की अपनी माँ वेनुरती को अपनी प्रिया बनाया। परंतु धीरे धीरे लोग उसे द्वारिका का सूर्य मानने लगते हैं। वे इस सत्य का अनुभव करते हैं कि, वेनुरती प्रद्युम्न की प्रियाहोकर भी माँ है। द्वारिका लौट कर प्रद्युम्न सर्व प्रथम द्वारिका की समुद्र से रक्षा करने की कोशिश करता है। अपने बाणों से समुद्र की गति अवरुध्द कर देता है। प्रद्युम्न को वापस आया देखकर साम्ब और बभ्रु को लगता है, वह राजमुकुट के लिए आया है। अत: उनमें संघर्ष होता है। वहाँसे बचकर प्रद्युम्न द्वारिका वापस आता है। इसी बीच अर्जुन सारी रानियों को ले जाने आता है। राजा उग्रसेन की मृत्यु हो जाती है। फिर साम्ब और बभ्रु के बीच संघर्ष छिड जाता है। वे दोनों भी सिंहासन पर अधिकार पाना चाहते हैं। तब प्रद्युम्न भी युध्द में भाग लेता है और विजयी होता है। राजमुकुट उसके अधिकार में आ जाता है। वह जब महल आता है, तब उसे पता चलता है कि अर्जुन अन्य रानियों के साथ वेनुरती को लेकर हस्तिनापुर की ओर चले गये हैं। प्रद्युम्न ने अब तक जो युध्द और संघर्ष झेले थे, वे वेनुरती की प्रेरणा से। अत: वह वेनु को खोजने चला जाता है। बभ्रु समझता है कि प्रद्युम्न वेनुरती के पास जाएगा ही, इसलिए वह वहीं, आक्रमण

करने का निश्चय करता है। प्रद्युम्न वेनुरती के पास आकर उसे हृदय से लगा लेता है। तब बभ्रु प्रद्युम्न पर आक्रमण करता है। वेनुरती भी प्रद्युम्न के पक्ष से युध्द करती है। दोनों बुरी तरह घायल हो जाते हैं और एक-दूसरे की बाहों में मर जाते हैं। रुक्मिणी द्वारिका के नष्ट होने का समाचार जानकर वापस द्वारिका लौटने का निर्णय लेती है, वह नए सिरे से एक शिशु की भाँति द्वारिका का पुनर्गठन करने का दृढनिश्चय करती है। उनके पास उस यादवी का नवजात शिशु भी है, जो द्वारिका से ठीक प्रस्थान काल में उत्पन्न हुआ था। वीरगति प्राप्त कर अमर हो गये अपने पुत्र प्रद्युम्न की स्मृति में वह उस नवजात शिशु को जीवित रखने और उसके लिए फिर से द्वारिका बसाने के लिए रुक्मिणी वापस हो जाती है।

' सूर्यमुख ' पुराण कथा के माध्यम से आधुनिक युगबोध को प्रस्तुत करता है। इस नाटक का शीर्षक पूर्णत: प्रतीकात्मक है। ' सूर्यमुख ' शीर्षक, प्रतीक रुप में आत्मसाक्षात्कार की स्थिति का द्योतक है।'[१] द्वारिका में महाभारत की पुनरावृत्ति हो रही है। कालसमुद्र का अंध:कार द्वारिका को डुबोना जा रहा है, किंतु इन सब बाह्य संघर्ष और अंतर्विरोधी के बीच प्रद्युम्न और वेनुरती का आश्चर्यजनक प्रेम, अंध:कार में प्रकाश की भाँति चमक रहा है। विध्वंस की इन परिस्थितियों में, द्वारिका की रक्षा करने की क्षमता केवल सूर्यमुखी प्रद्युम्न में है। जैसे विपरित परिस्थितियों में से सूर्य चमकता है, वैसे ही विरोध-विद्रोह के वातावरण में प्रद्युम्न चमकता है। दुर्गपाल साम्ब से कहता है - ' वह प्रद्युम्न भविष्य है। वह नया है। सूर्यमुख है वह। उसने इस अंधकार में प्रेम का एक नया मन्वंतर प्रारंभ किया है।[२] वेनुरती भी प्रद्युम्न से कहती है ' मेरे प्राण। जिस क्षण तुमने अपने मुख का मुखौटा तोडा है, उस क्षण अंत:पुर में मुझे ऐसा लगा, जैसे इस नगर में सहसा कोई सूर्य उग आया है।"

---

१ डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल - सूर्यमुख - पृ.क्र.७ - प्र.सं.

२ डॉ.लक्ष्मीनारायण लाल - सूर्यमुख - पृ.क्र.३३

नाटक के नारायणी सेना के यदुवंशी ,वर्तमान शासन-व्यवस्था के प्रतीक हैं, जो कहते हैं संघर्ष के बाद अब उनके अधिकार और भोग का समय है। यह भोगवादी दृष्टिकोण आज की युवा पीढी का भी है। उत्तर महाभारत काल की इस परिस्थिति को लेकर नाटककार ने स्वातंत्र्योत्तर भारत की युवा पीढी के विद्रोह, आक्रोश, स्वार्थ और मूल्यहीनता का चित्रण किया है। आधुनिक पीढी के समान साम्ब भी वर्तमानजीवी है। उसके लिए भूतकाल के योध्दा अब केवल याद करने के लिए हैं। दुर्गपाल से वह कहता है "हमारे वर्तमान को अपने भूत से इस तरह जोडकर हमारा उपहास करना चाहते हो ?"[१] आज की युवा पीढी के संदर्भ में नाटककार ने दुर्गपाल के माध्यम से कृष्ण को अतीत,साम्ब को वर्तमान और प्रद्युम्न को भविष्य कहा है। दुर्गपाल साम्ब से कहता है "कृष्ण अब अतीत है। वर्तमान अब तुम हो और वह प्रद्युम्न भविष्य है।"[२] अतीत जो कृष्ण के रूप में मर चुका है या अर्जुन के रूप में अशक्त है। वर्तमान जो साम्ब और बभ्रु के रूप में अनास्था,अविश्वास,कुंठाग्रस्त निरुद्देश्य विरोध एवं मूल्यहीनता के रूप में जीवित आधुनिक पीढी का प्रतीक है। भविष्य प्रद्युम्न के रूप में संशयग्रस्त है और अनात्मबोध की स्थिति का प्रतीक है।

रुक्मिणी नये मूल्यों की विरोधी है, किंतु उसके विरोध का कारण मनोवैज्ञानिक अधिक है। बभ्रु में आधुनिक मानव का विद्रोह और साम्ब में संशयबोध प्रमुख है। बभ्रु के माध्यम से आधुनिक पीढी की हिंसक वृत्ति तथा उद्देश्यहीन विरोध के संकेत भी मिलते हैं। व्यासपुत्र के माध्यम से नाटककार ने आज के अवसरवादी लेखकों तथा बुध्दिजीवियों पर तीखा व्यंग्य किया है। इस प्रकार नाटक के सभी पात्र किसी वर्गगत विशेषता का प्रतिनिधित्व करते हैं।

इस नाटक के संवाद भी सांकेतिक है। इसमें यत्र-तंत्र प्रतीकों का सहारा लिया गया है। यथा-" उसी कोमल कोण से बादल और बिजली तडप उठती है,

---

१ डॉ.लक्ष्मीनारायण लाल - सूर्यमुख - पृ.८७।

२ डॉ.लक्ष्मीनारायण लाल - सूर्यमुख - पृ.१४३-४४।

और मेरे अंत:पुर के सारे दीप बुझ जाते है।`[1] यहाँ वेनुरती की विरही अवस्था दिखाई देती है। उसके कोमल हृदय में द्वंद्व चलने लगता है। उसकी आशाएँ खत्म हो जाती हैं। अपने अंतिम समय में वेनुरती कहती है ` रात बीतने को हैं, सूर्य मेरे पास आओ। पर्वत शिखर पर अब बर्फ पिघल रही है। प्रलय मेरी मुट्ठी में चुप है। कमल-कोष में चाँद उगने को है।`[2] यहाँ वेनुरती, नये सबेरे का संकेत करती है। दुर्गपाल कहता है, मुझे लगता है समुद्र का वह काला जल, सहस्त्र जिव्हाओं वाले सर्प की तरह इस दुर्ग में किसी को ढूँढता है।`[3] यहाँ हस्तिनापुर के विनाश की ओर संकेत किया है।

नाटककार का लक्ष्य ` सूर्यमुख ` शीर्षक द्वारा व्यंजित होता है। नाटक की संपूर्ण शक्ति प्रद्युम्न में केंद्रित है तथा प्रद्युम्न ही सूर्यमुख है - द्वारिका के लिए और वेनुरती के लिए भी।

` सूर्यमुख ` में हमें यदुवंशियों के पारस्परिक विरोध एवं विद्रोह के वातावरण में आज की युवा पीढ़ी के दिग्भ्रम तथा आधुनिक शासन-व्यवस्था की झलक देखने को मिलती है। ` सूर्यमुख ` स्वतंत्र भारत की विभीषिकाओंसे हमारा साक्षात्कार कराता है। स्वार्थ के संघर्ष के कारण किस प्रकार द्वारिका नष्ट हुई इससे हमारे देशवासियों और नेताओं को शिक्षा लेने की ओर संकेत किया है।

मिस्टर अभिमन्यु (सन १९७१)

डॉ. लाल ने पौराणिक चरित्र को नये संदर्भ में रखकर समकालीन परिस्थितियों में आधुनिक व्यक्ति की त्रासदी और विडंबना को उद्घाटित किया है। नाटक की कथा स्पष्ट करती है, कि भारत की वर्तमान समाज व्यवस्था एक ऐसा चक्रव्यूह है, जिससे बाहर निकल पाना सरल नहीं।

---

१ डॉ.लक्ष्मीनारायण लाल - सूर्यमुख - पृ.क्र.८७

२ -वही- पृ.क्र.१४३-४४-

३ डॉ.लक्ष्मीनारायण लाल - सूर्यमुख - पृ.क्र.३० ।

राजन एक ईमानदार और आदर्श विचारों का व्यक्ति है। वह सरकारी नौकर है और कलक्टर के पद पर काम कर रहा है। उसके पिता एक वकील है। दो बच्चे कान्वेंट में पढ़ते हैं। उसकी विमल नामक सुशील पत्नी है।

चुनाव में शासक दल का उम्मीदवार गयादत्त विजयी होता है और 'लेबर फ्रंट' का नेता आत्मन हार जाता है। इस जीत का श्रेय राजन को दिया जाता है और सरकार, कमिश्नर के रूप में उसकी पदोन्नति कर देती है। राजन की आत्मा और ईमानदारी उसे कचोटती है। चुनाव में किसी प्रकार की बेईमानी न करके भी उसे षड्यंत्र का भागीदार बनाया जाता है। उसे पुरस्कृत किया जाता है। राजन राजकीय व्यवस्था की इस नीति का विरोध करना चाहता है। वह चाहता है, कि नौकरी से त्यागपत्र देकर अपना विरोध प्रदर्शित करे। लेकिन इस बीच कई घटनाएँ घट जाती हैं। केजरीवाल की मिल को टैक्स के बकाए की वजह से उसने सील कर दिया था - सरकारी गुप्त आदेश था - कड़ी कार्यवाही हो। अत: केजरीवाल के 'फायर आर्म्स' जब्त कर लिये जाते हैं। केजरीवाल राजन के पिता को अपने में शामिल कर लेता है। गयादत्त राजन पर दबाव डालता है, कि मामले को रफा-दफा कर दिया जाएँ। परंतु राजन अटल रहता है। अंतत: राजन के बंगले के बाहर गयादत्त आत्मन की हत्या कर देता है और इस हत्या के षड्यंत्र में राजन को भी फँसाने की धमकी देता है। पत्नी विमल राजन को,अपने बच्चों और खुद राजन के भविष्य की दुहाई देती है। इस प्रकार एक षड्यंत्र का चक्रव्यूह पूरा किया जाता है, कि राजन व्यवस्था से बाहर निकल न सके, इसी में बना रहे, अपनी इच्छा, आत्मा और ईमानदारी की बलि देकर गयादत्त का समर्थन करे। यह सही है, कि राजन भीतर से इस व्यवस्था को नापसंद करता है और इससे बाहर आना चाहता है, लेकिन व्यवस्था के चक्रव्यूह को वह तोड़ नहीं पाता। वह व्यवस्था को तोड़कर बाहर नहीं आ पाता,क्योंकि बाहर आने से अनेक खतरे हैं, जिसके प्रति उसके पिता, उसकी पत्नी और गयादत्त ने उसे पहले ही आगाह कर दिया है। अंतत: राजन वही करता है, जो सब कहते हैं। वह आत्मन् की आत्महत्या की पुष्टि करता है। गयादत्त का समर्थन करता

है, और पत्नी एवं पिता की बात मानकर नए पद के फार्म पर हस्ताक्षर कर देता है।

महाभारत का अभिमन्यु चक्रव्यूह से सचमुच बाहर आना चाहता था। बाहर आने के लिए उसने एक सच्ची लडाई भी लडी थी, जिसमें उसे वीरगति प्राप्त हुई। वह मरकर भी अमर हो गया। लेकिन डॉ.लाल का अभिमन्यु सचमुच बाहर आना नहीं चाहता। उसे ऐसा लगता है, कि वह इस चक्रव्यूह से बाहर जाना चाहता है। अपने इस विश्वास को और पक्का करने के लिए वह सच्ची लडाई भी लडता है। लेकिन महाभारत के अभिमन्यु और डॉ.लाल के 'मिस्टर अभिमन्यु' - राजन, दोनों की सच्ची लडाई में एक मौलिक अंतर यह है, कि राजन की लडाई 'एक अनिर्णय में पडे व्यक्ति की लडाई है, उस व्यक्ति की नहीं, जो निर्णय ले चुका है,' जैसा महाभारत में अभिमन्यु ने किया था।

श्रीकांत वर्मा ने लिखा है 'मिस्टर अभिमन्यु' के माध्यम से उठाया गया प्रश्न बहुत से लोगों का, शायद हम में से प्रत्येक का प्रश्न हो सकता है। क्या हम भी किसी ऐसे चक्रव्यूह में नहीं घिरे हुए हैं, जिससे बाहर निकलने की पर्याप्त इच्छा और संकल्प हमारे पास नहीं है। हमारी त्रासदी यह नहीं है, कि हम अभिमन्यु हैं, बल्कि यह है, कि हम अभिमन्यु नहीं है। हम 'मिस्टर अभिमन्यु' हैं। चक्रव्यूह हर युग का अपना होता है, अभिमन्यु सभी युगों का एक ही होगा। पौराणिक चरित्र को एक नये मंच पर पेश करना अपने आप में एक चमत्कारिक कृत्य हो सकता है। मगर किसी पौराणिक चरित्र के मूल अर्थ को एक नये संदर्भ में रखकर अपने समय की विडंबना को उद्घाटित करना ज्यादा कठिन काम है। ऐसे करते वक्त दो युगों की स्थितियों के अंतर और फासले को योग्य रखना पडता है। 'मिस्टर अभिमन्यु' भी यह फासला सामने रखता है। वह अपने समय पर टिप्पणी करता हुआ यह घोषणा करता है, उसकी त्रासदी बिल्कुल आज की त्रासदी है। उसके सवाल बिल्कुल आज के सवाल है। उसकी मृत्यु बिल्कुल आज की मृत्यु है। उसका चक्रव्यूह बिल्कुल आज का चक्रव्यूह है।[१]

---

१ डॉ॰ लक्ष्मीनारायण लाल - मिस्टर अभिमन्यु (नाटक के आवरण पृष्ठ से)

प्रतीक का प्रयोग करते हुए डॉ.लक्ष्मीनारायण लाल ने अंत:संघर्ष को जो आज के `मिस्टर अभिमन्यु` का साक्षात चक्रव्यूह है - उसे समग्रता में उपस्थित कर, भारतीय जीवन की त्रासदी को और भी गहरा कर दिया है। आदर्शवादी आत्मन राजन के व्यक्तित्व का वह अंश है, जो नायक अभिमन्यु को चक्रव्यूह से बाहर निकलने को प्रेरित करता है। राजन आत्मन हो सकता था परंतु वह कभी भी आत्मन न हो सका, क्योंकि गयादत्त ने उसके इस अंश का पूरी तरह संहार कर दिया था। इस रुप में वह अनायास ही राजन की आत्मा का प्रतीक बन जाता है, जिसकी हत्या कर दी जाती है। इस नाटक की चरमसीमा वही है, जहाँ आत्मन के रुप में मर कर भी,राजन जीवित रहने के लिए अभिशाप्त है। पौराणिक अभिमन्यु के शत्रु बड़े-बड़े धनुर्विधाविशारद आचार्य थे तो आधुनिक अभिमन्यु के विरोध में गयादत्त जैसे पूँजीपति ,पिताजी और पत्नी विमल हैं। पौराणिक चक्रव्यूह से अभिमन्यु बाहर निकलना चाहता था और इस प्रयास में वीरतापूर्वक लड़ता हुआ वह शहीद हो जाता है। लेकिन आधुनिक अभिमन्यु अपने चक्रव्यूह से निकलने का इच्छुक बिल्कुल नहीं है। `अभिमन्यु` के आगे `मिस्टर` शब्द जोड़कर दो युगों की विभाजक रेखा को स्पष्ट किया गया है। पुराना बुध्दिजीवी, अपने आदर्श के लिए निर्भय होकर प्राणोत्सर्ग करता है, जबकि आधुनिक बुध्दिजीवी ऐसे समय दुम दबाकर भाग जाता है। `मिस्टर` शब्द में आधुनिक बुध्दिजीवी के प्रति व्यंग्य दिखाई देता है। असंस्कृत मर्यादाहीन गयादत्त राजनीतिक अवसरवादिताका प्रतीक है जो राजन के व्यक्तित्व का ही दूसरा अंश है। वस्तुत: गयादत्त की अवसरवादिता,आत्मन की सिध्दांतवादिता और व्यवस्थापन के चक्रव्यूह में फँसे राजन की चीखपुकार हमारे वर्तमान जीवन के खोखलेपन का ताना-बाना प्रस्तुत करती है। नाटक में जितने भी पात्र हैं, वे सब अलग अलग चरित्र होकर भी अलग अलग तरह के `मिस्टर अभिमन्यु` हैं। सब अपने अपने चक्रव्यूह में बंदी हैं और सब एक-दूसरे के लिए चक्रव्यूह बनते हैं। नाटक की प्रतीक शक्ति शीर्षक में केंद्रित है।[१]

---

१ डॉ.रमेश गौतम - हिंदी के प्रतीक नाटक - पृ.क्र.२१७-१८।

` मिस्टर अभिमन्यु ` में आत्मन और गयादत्त वर्ग - विशेष का प्रतिनिधित्व करते हैं। गयादत्त अवसरवादी नेता है तो आत्मन आदर्शवादी, बुध्दिजीवी और विरोधी पक्ष का जागरुक नेता। राजन प्रारंभ में गयादत्त से धृणा करता है। आत्मन् के प्रति उसका विशेष झुकाव दिखाई देता है। गयादत्त आदर्शवादी-आत्मन की हत्या कर देता है और राजन को लगता है, कि यह हत्या मैंने की है। राजन के व्यक्तित्व में गयादत्त और आत्मन दोनों वर्तमान हैं। उसके व्यक्तित्व का आत्मन नामक अंश उसे चक्रव्यूह से बाहर निकलने के लिए प्रेरित करता है, किंतु गयादत्त वाला अंश अधिक प्रभावशाली सिध्द होता है और राजन अपने आत्मन को मार डालता है यह है विवेक की हत्या। मन के तंत्र को स्वस्थ दिशा में चलाने वाले विरोधी नेता आत्मन को मार डालने से ही वह गयादत्त के षड्यंत्र में शामिल हो सका। नाटक के अंत में राजन, अफसरी रोबदाब का बनावटी चेहरा फिर से ओढ लेता है।

लक्ष्मीनारायण लाल अपने नाटकों में संवेद्य बात या तथ्य को शक्तिशाली ढंग से कहने के लिए प्रतीक, संकेत और प्रतिनिधि चरित्रों का आश्रय लेते हैं, उनमें मिस्टर अभिमन्यु ` उल्लेखनीय है।

कर्फ्यू (सन १९७२)

लक्ष्मीनारायण लाल का ` कर्फ्यू ` नाटक जीवन की विवशताओं का प्रतीक है। ` कर्फ्यू ` आधुनिक जीवन के संदर्भ में हमारी वैवाहिक पध्दति पर करारा व्यंग्य करता है। डॉ.लाल ने सांकेतिक शैली में बाहर के कर्फ्यू को मनुष्य के भीतरी कर्फ्यू से जोडा है। यह कर्फ्यू है - सभ्यता, संस्कृति, मर्यादा एवं नैतिकता का। यही कर्फ्यू समाज और व्यक्ति के मन में अनेक विकृतियों को जन्म देने वाला है। सभ्यता की सीमाओं के कारण मनुष्य जो कुछ नहीं कर सकता और अपनी आंतरिक वृत्तियों का दमन करने के लिए मजबूर होता है, इस तथाकथित कर्फ्यू को डॉ.लाल ने अपने नाटक में तोडने का प्रयास किया है।

नाटक में केवल चार पात्र हैं। एक दम्पति है - कविता और गौतम, एक नवयुवती है मनीषा और एक पुरुष है - संजय। कर्फ्यू वाले दिन संयोगवश बाहर निकली हुई मनीषा, गौतम के घर घुस जाती है और गौतम की पत्नी, कलाकार संजय के घर पनाह लेती है। कर्फ्यू के कारण इन दोनों को सारी रात अपना घर छोड़कर दूसरों के घरों में रहना पड़ता है। गौतम कर्फ्यू के समय सामने बैठी हुई युवती मनीषा को आलिंगन बध्द करना चाहता है, लेकिन सभ्यता और सुसंस्कृत वातावरण, जिसमें उसका विकास हुआ है, उसे ऐसा करने से रोकता है। सभ्यता के बंधन कर्फ्यू की तरह उसे बांधे रखते हैं, किंतु अंत में आदिम प्रवृत्तियाँ अपना रंग दिखाती हैं परिणाम वही होता है, जो इस स्थिति में स्वाभाविक था।

सुसभ्य, सुसंस्कृत, पतिपरायण कविता अपने ऊपर लगाये हुए कर्फ्यू को खुद तोड़कर, संजय की बाहों में आत्मसमर्पण कर देती है। इधर गौतम और मनीषा भी सभ्यता के बंधन तोड़कर, मन पर लगा हुआ बंधन का कर्फ्यू तोड़कर एकरूप हो जाते हैं। वास्तव में यह बात बिल्कुल स्वाभाविक थी। इस स्थिति में ऐसी बात घटित होना बिल्कुल स्वाभाविक था।

गौतम-मनीषा, संजय-कविता चारों पात्र अपने मन पर लगाये हुए कर्फ्यू को खुद तोड़ते हैं। पर जब वे ऐसा करते हैं, तो उन्हें अपने भीतर के एक नये व्यक्तित्व का परिचय मिलता है। अपने चरित्र के अज्ञात पक्ष को स्वीकार करते हैं। कर्फ्यू टूटने पर कविता वापस घर आती है और मनीषा को अपने बेडरूम में निढाल सी पड़ी देखकर भी कुछ बोलती नहीं है। वह पति पर गुस्सा नहीं करती। गौतम भी कविता की, रात की अनुपस्थिति, संजय के साथ कविता के रातभर अकेले रहने की कल्पना करके भी, परिस्थिति को उसी सामान्य भाव से स्वीकार करता है। क्योंकि उसने भी वही सब किया था। इसलिए वह समझता था कि ऐसा भी हो सकता है। जीवन के इस मोड के कारण कविता और गौतम पहली बार एक-दूसरे के व्यक्तित्व के, दूसरे पक्षों को समझते हैं, जानते और पहचानते हैं। उन्हें लगता है, कि उन्होंने एक दूसरे को जिस प्रकार जाना, समझा है वस्तुत: वही उनके असली दाम्पत्य जीवन की शुरुआत है, और वही सोचकर

उस दिन दोनों अपने विवाह की पहली वर्षगाँठ मनाते हैं।

सभ्यता और संस्कृति का यह प्रतिबंध डॉ.लाल को कर्फ्यू की तरह लगता है। स्त्री-पुरुष के यौन संबंधों के परिप्रेक्ष्य में पति या पत्नी होना अस्वाभाविक बंधन है, जिसे कर्फ्यू की तरह मनुष्य अपने ऊपर ओढ़े रहता है। नाटक में वर्णित स्वाभाविक स्थिति वह है, जब यह कर्फ्यू टूट जाता है। अपने सभी पात्रों के व्यक्तित्व पर लगे कर्फ्यू को तोड़कर नाटककार ने स्त्री-पुरुष के यौन संबंधों को एक नये रूप में तलाशने का प्रयत्न किया है।

गौतम की स्वीकारोक्ति है जो सहज है, मानवोचित है, उस पर इतनी पाबंदी क्यों ? जो अपने भीतर का कर्फ्यू नहीं तोड़ते, वही बाहर कर्फ्यू लगाते हैं -- और उसे तोड़ने के लिए अपराध करते हैं।[१] गौतम की यह स्वीकारोक्ति वस्तुत: नाटककार का दर्शन है। नाटक में चारों चरित्र अपने भीतर के कर्फ्यू को तोड़कर एक नये जीवन संदर्भ से जुड़ते हैं, और यही नाटककार चाहता है। डॉ.लाल के इस नाटक का मूल कथ्य है - बंधनपूर्ण जीवन के खिलाफ एक सहज और मुक्त जीवन जीने का जीवन-दर्शन स्वीकार करना व्यक्तित्व के भीतर छुपे हुए विभिन्न व्यक्तित्वों की पहचान उजागर करना, दर्शक-पाठक को यह एहसास दिलाना, कि वे भी आत्मसाक्षात्कार करके सत्य को प्राप्त करें।`[२]

नाटक का शीर्षक पात्रों की जीवन स्थितियों पर घटित होकर प्रतीक रूप में नाटककार की आधुनिक जीवन दृष्टि को प्रस्तुत करता है।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है, कि डॉ.लाल के नाटकों में पूर्णत: प्रतीकात्मकता दिखाई देती है। शीर्षक, पात्र, घटना, मंच-सज्जा, ध्वनि-संगीत योजना सभी में प्रतीक ही प्रतीक नजर आते हैं।

---

१ डॉ.लक्ष्मीनारायण लाल - कर्फ्यू - पृ.क्र.११४-११५।

२ नरनारायण राय - नाटककार लक्ष्मीनारायण लाल की नाट्य साधना - - पृ.क्र.९९।